द्विमासिक

वर्ष : ५ अंक : २५ जुलाई - अगस्त १९९४

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज

सदैव सम और प्रसन्न रहना
ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।

वर्ष : ५
अंक : २५
जुलाई-अगस्त १९९४

सम्पादक : के. आर. पटेल

शुल्क वार्षिक : रू. २५/-
आजीवन : रू. २५०/-

परदेश में वार्षिक : US$ १५ (डॉलर)
आजीवन : US$ १५० (डॉलर)

कार्यालय :
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५.
फोन : ४८६३१०, ४८६७०२.

परदेश में शुल्क भरने का पता :
International Yoga Vedanta Seva Samiti
8 Williams Crest,
Park Ridge, N. J. 07656 U.S.A.
Phone : (201) - 930 - 9195

टाईपसेटींग : पूजा लेसर पॉईन्ट

प्रकाशक और मुद्रक : श्री के. आर. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती,
अहमदाबाद-३८० ००५ ने
भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अहमदाबाद में
छपाकर प्रकाशित किया ।

अनुक्रम

'ऋषि प्रसाद' हर दूसरे महीने की ९ वीं तारीख को प्रकाशित होता है ।

कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें ।

आत्मानन्द छलकाया आसारामजी

ऐसा कैसा मदवा पिलाया आसारामजी ।
झूमे हजारों इंसान झुमाया आसारामजी ॥

बोले तो झरा अमृत, गाये तो गगन गूँजा ।
नाचे तो सारा जयपुर नचाया आसारामजी ॥

गीता और भागवत से, जन-चेतना जगाकर ।
संकीर्तन से आतम नहलाया आसारामजी ॥

आनंद-सुधा भरके प्रसन्न प्रवचनों से ।
घट-घट में आत्मानंद, छलकाया आसारामजी॥

दृष्टांत से हँसी की फुलझड़ियाँ छुड़ाकरके ।
उर के अन्दर उजाला छिटकाया आसारामजी॥

शब्द से अगोचर को, शब्द में प्रगटकर ।
बूँदों में ही सागर को उमड़ाया आसारामजी ॥

जो सिर पै चढ़के बोला हाँ सिर पै चढ़के बोला ।
किस देश का यह जादू जगाया आसारामजी ॥

ऐसा कैसा मदवा पिलाया आसारामजी ।
झूमे हजारों इंसान झुमाया आसारामजी ॥

- कमलाकर
जयपुर, राजस्थान

कामना है... कृपाश्री मिले आपकी

रूप, यौवन, प्रणय की नहीं कामना ।
कामना है कृपाश्री मिले आपकी ॥
जन्म कोटि लिए अनगिनत योनि में ।
इस धरा या किसी दूसरे लोक में ।
बन्धु, माता-पिता औ' स्वजन-मित्र भी ।
थे मिले, लौकिकी सुख के, स्वार्थ के ॥
स्वर्ण, रत्नों, भवन की नहीं कामना ।
कामना है चरण-रज मिले आपकी ॥
हर जनम में अविद्या सिखाई गई ।
ले गई जो अहं के पतन-गर्त में ।
जय-विजय, मान-सन्मान समझा जिन्हें ।
थे वही पन्थ मेरे नियत नर्क के ॥
इन्द्रपद या सुयश की नहीं कामना ।
कामना है मिटे शृंखला जन्म की ॥
आपने ही कृपाकर मनुज तन दिया ।
मंत्र देकर मुझे नाथ ! अपना लिया ।
शक्ति से ज्ञान की ज्योति निस्सीम दे ।
प्राण-उत्थान का राज समझा दिया ॥
सम्पदा, सुख-विषय की नहीं कामना ।
कामना नवधा-भक्ति मिले आपकी ॥
आप ही ब्रह्म हो, श्रीहरि और शिव ।
पूर्ण ब्रह्मांडनायक गुरु इष्ट त्राता ।
शिष्य के पापहर, काम के रामकर ।
आप ही हो प्रभु ! वास्तविक मोक्षदाता ॥
ऋद्धियों-सिद्धियों की नहीं कामना ।
कामना छबि हृदय में दिखे आपकी ॥
रूप, यौवन, प्रणय की नहीं कामना ।
कामना है कृपाश्री मिले आपकी ॥

- ज्योतिषी
संत श्री आसारामजी आश्रम, खंडवा रोड़, इन्दौर (म.प्र.)

हरिहर आदिक जगत् में पूज्य देव जो कोय ।
सद्गुरु की पूजा किये सबकी पूजा होय ॥

तुम संसार में रत रहे तो क्या बड़ी बात है ? तुम संसार से मन हटाकर भगवान की तरफ चले तो भी क्या बड़ी बात है ? देवी-देवताओं को रिझाया तो क्या बड़ी बात है ? कृष्ण-क्राईस्ट, राम-रहीम को मनाया तो क्या बड़ी बात है ? कारीगरों द्वारा बनाई गयी मूर्ति के आगे तुमने अपना प्रेम अभिव्यक्त किया तो क्या बड़ी बात है ? लेकिन परमात्मा ने जिस दिल को बनाया है और सद्गुरुओं ने जिस दिल को सजाया है ऐसे दिलरुबा व्यास जैसे संतपुरुषों के साथ तुम्हारा दिल यदि प्रेमाभक्ति से भर जाता है तो तुमने बहुत बड़ी बात कर ली ।

जहाँ में उसने बड़ी बात कर ली ।
जिसने ब्रह्मवेत्ताओं के दिल से
मुलाकात करली ॥

वे लोग बड़े भाग्यशाली हैं जिन्हें अपने जीवन में जीवित महापुरुषों का सान्निध्य मिला है । ऐसा एक दुर्भाग्य का समय आया था कि जब लोगों को जीवित महापुरुषों की मुलाकात नहीं हो रही थी । धर्म के नाम पर पंडित-पुजारियों ने ठेका ले रखा था । लोग ठगे जा रहे थे । ऐसे ही युग में, ऐसे ही समय में परमात्मा की चेतना व्यासजी के रूप में प्रगट हुई । उन्होंने वेद का, कर्म एवं उपासना का हिस्सा पृथक्-पृथक् करके समाज पर बड़ा उपकार किया । लाखों श्लोकों की रचना की, अठारह पुराण लिखे । विश्व के किसी भी धर्म को देखोगे तो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से व्यासजी का ही प्रसाद दृष्टिगोचर होगा । बाकी के सब पंथ, मत-मतांतर अपना थोड़ा-सा मिश्रित करके अपना डिम-डिम चलाते हैं ।

वेदव्यासजी ने ब्रह्मसूत्र लिखा है और आद्यशंकराचार्यजी ने उस पर भाष्य की रचना की है, जो ज्ञानप्रधान है । अभी-भी कई लोग भ्रांत-चित्त हैं कि हमें ज्ञान-ध्यान से क्या लेना-देना ? हम तो भक्ति करेंगे ।

भक्ति करो, यह ठीक है, अच्छा है । परंतु किसी भी देव की भक्ति के बाद भी कुछ-न-कुछ बाकी रह जाता है । रामकृष्ण ने कई संप्रदायों के सिद्धांत के अनुसार भक्ति की, साधनाएँ की । सखी संप्रदाय की साधना की, इस्लाम संप्रदाय के अनुसार भी साधना की । हिन्दू धर्म में भी कई कर्मकाण्डों के अनुसार साधना की । फिर भी उनकी साधना शेष थी । माँ काली की पूजा-उपासना की, माँ के दीदार किये फिर भी पूजा बाकी रही । अंत में जब सद्गुरु तोतापुरी का ज्ञान मिला तब सारी पूजाएँ पूर्ण हो गईं ।

रामकृष्ण के पास जब तोतापुरी आये तो रामकृष्ण ने कहा : ''अब मुझे ज्ञान पाने की, साक्षात्कार करने की क्या जरूरत है ? क्योंकि मुझे तो माँ काली के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं ।''

तोतापुरी ने कहा : ''जाओ, माँ से ही पूछकर आओ ।''

रामकृष्ण गये मंदिर में और माँ की प्रार्थना करने लगे । माँ प्रगट हो गयीं । तब रामकृष्ण बोले : ''माँ, माँ ! तोतापुरीजी कहते हैं कि 'तुम मेरे पास से तत्त्वज्ञान लो' ।''

माँ ने कहा : ''हाँ ठीक है । तुम तोतापुरी गुरु के चरणों में आत्मज्ञान पाओ ।''

तब रामकृष्ण बोले : ''माँ ! फिर आपके भजन

का फल क्या ? आपके दर्शन का फल क्या ?''

माँ काली ने कहा : ''मेरी पूजा, भक्ति, सेवा और दर्शन का फल यही है कि घर बैठे तोतापुरी गुरु तुम्हें ज्ञान देने आये। बस, यही मेरे दर्शन का फल है।''

तोतापुरी गुरु के चरणों में बैठकर रामकृष्ण परमहंस ने आत्मज्ञान पाया और पूर्णता को प्राप्त हुए। कितने ही कर्म करो, कितनी ही उपासनाएँ करो, कितने ही व्रत और अनुष्ठान करो, कितना ही धन इकट्ठा कर लो और कितना ही दुनिया का राज्य भोग लो लेकिन जब तक सद्गुरु के दिल का राज्य तुम्हारे दिल तक नहीं पहुँचता, सद्गुरुओं के दिल के खजाने तुम्हारे दिल में जब तक उड़ेले नहीं जाते, जब तक तुम्हारा दिल सद्गुरुओं के दिल को झेलने के काबिल नहीं बनता, तब तक सब कर्म, उपासनाएँ, पूजाएँ अधूरी रह जाती हैं। देवी-देवताओं की पूजा के बाद भी कोई पूजा शेष रह जाती है, लेकिन सद्गुरु की पूजा के बाद कोई पूजा नहीं बचती।

हरिहर आदिक जगत् में पूज्य देव जो कोय।
सद्गुरु की पूजा किये सबकी पूजा होय॥

मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि तुम मंदिर में न जाओ, पुजारियों के पास न जाओ। नहीं, नहीं। मेरे कहने का मतलब तो यह है कि यह सब करने के बाद भी कुछ करना बाकी रह जाता है। यह मेरा भी अनुभव है। हम तीन साल के थे तो ऐसे ही गुनगुनाते थे। पाँच साल के थे तब झुलेलाल को रिझाते थे क्योंकि सिंधी कोम में जन्म हुआ था। कुछ समय, कुछ वर्ष ऐसा किया। फिर भी कुछ पूजा शेष रह गयी। फिर पहुँचे पीपल देवता के पास। पीपल में देवता है, इस भाव से पीपल देवता को रोटी चढ़ाते थे, आलिंगन करते थे। उसके मूल को चरण मानकर जरा दबाते थे। यह सब किया। माँ काली की आराधना की, कृष्ण को रिझाया, शिव को रिझाया। न जाने कितनों-कितनों को रिझाया। २१ साल तक ऐसा करते रहे। अनजाने में कुछ चमत्कार भी हो जाते थे। लेकिन फिर भी कुछ पूजा बच जाती थी।

माँ काली ने कहा : ''मेरी पूजा, भक्ति, सेवा और दर्शन का फल यही है कि घर बैठे तोतापुरी गुरु तुम्हें ज्ञान देने आये। बस, यही मेरे दर्शन का फल है।''
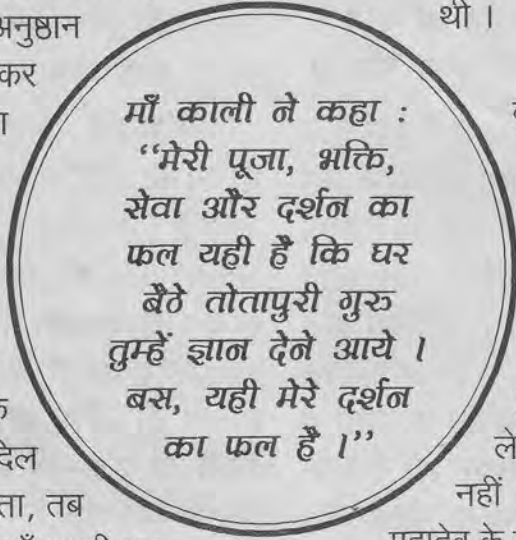
फिर घूमते-घामते गये वृंदावन। वहाँ श्रीकृष्ण नहीं मिले, श्रीकृष्ण की मूर्ति मिली। रणछोड़राय के दर्शन करने गये तो पुजारियों का टोला ! गये केदार तो केदारनाथजी की प्रतिमा और पुजारियों का झुंड ! गये काशी लेकिन विश्वनाथ की मुलाकात नहीं हुई। रोज सुबह कामनाथ महादेव के मंदिर में जाते, उनके आगे सिर पटकते। जो-जो मंदिर मिलता उसमें जाते लेकिन देखते कि मंदिर के देव तो मौजूद हैं, प्रतिमा मौजूद है, परंतु मंदिर के देव कुछ कह नहीं रहे हैं।

आखिर में भटकते-भटकते पहुँचे सद्गुरु श्री लीलाशाहजी महाराज के पास और गुरुदेव ने सत्संग के द्वारा, अपनी करुणा-कृपा के द्वारा समस्त कल्पनाओं को हटाकर 'तत्त्वमसि' के अर्थ को समझा दिया। अनुभव करा दिया कि : 'सो प्रभु दूर नहीं, प्रभु तू है।' जब सद्गुरु की पूजा हो गयी तब कोई पूजा न बची। फिर तो केदारनाथजी की ओर निहारा तो शिवजी मुस्कराते मिले। रणछोड़रायजी के पास गये तो वे भी गुनगुनाते मिले। अब तो पत्थरों में भी कोई पुकारता हुआ मिलता है। दरिया की लहरों में भी कोई गाता हुआ मिलता है। क्यों ? क्योंकि

सद्गुरु की पूजा हो गयी । उनकी पूजा से पूर्णता का अहसास हो जाता है । उनकी पूजा क्या है ? सद्गुरु की पूजा यही है, सद्गुरु यही चाहते हैं कि तुम भी सद्गुरु-तत्त्व का अनुभव कर लो ।

सद्गुरु उन्हें कहा जाता है जो सत्य का बोध करा दें। अंधकार को मिटाकर आत्मप्रकाश की जगमगाहट करा दें । कल्पित जीवन से बचाकर शाश्वत् संगीत का स्वर बजा दें । उन्हें हम सद्गुरु कहते हैं और ऐसे जो भी सद्गुरु जहाँ भी हैं उन्हें व्यास कहा जाता है और आज की पूर्णिमा को व्यासपूर्णिमा । व्यास का अर्थ है जो विस्तार करें। ब्रह्मज्ञान का जो विस्तार करते हैं उन्हें व्यास कहते हैं एवं ऐसे व्यास के पूजन का दिन ही है गुरुपूनम ।

जो हमें परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार कराने का सामर्थ्य रखते हैं ऐसे सद्गुरुओं को व्यास कहा जाता है । जो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ हैं, जो अपनी वाणी के द्वारा हमारी कल्पनाओं को हटाकर हमारी चेतना को जगा देते हैं, ऐसे पुरुषों को सद्गुरु कहा जाता है । स्वामी विवेकानंद की भाषा में कहें तो :

''जब तक ऐसे पुरुष इस पृथ्वी पर हैं, तब तक यदि सब धर्म-ग्रंथ कुँए में चले जायें, सब धर्म के निशान रसातल में चले जायें, सब संप्रदाय, पंथ एवं मत-मतांतर समुद्र में खो जायें फिर भी धर्म का लोप नहीं हो सकता । जब तक एक ऐसा सद्गुरु है और ऐसे सद्गुरु को झेलनेवाला एक सत्शिष्य है तब तक धर्म पुनः प्रगट हो सकता है ।''

ऐसे सद्गुरुओं के पूजन का पावन दिवस ही गुरुपूनम कहलाता है । गुरुपूनम के दिन से ऋषि, साधु-संन्यासी, तपी-जपी एवं महापुरुष लोग, चार महीने तक एक स्थान पर रहकर सूक्ष्म चिंतन, मनन करते हैं, ब्रह्मविद्या में प्रतिष्ठित होते हैं, औरों को लाभान्वित करते हैं। गाड़ी, मोटर और पक्की सड़कों का जमाना नहीं था, यति पैदल यात्रा करते थे तब यह नियम बनाया होगा कि चार मास साधु-संत एक जगह रहें। यह नियम अभी कई संत-महात्मा पालते हैं । कई महात्मा युग की माँग के अनुसार विचरण भी करते हैं । कुल मिलाकर यह कहना है कि इन चार महीनों में अपनी आध्यात्मिक तिजोरी बढ़ानी चाहिए और अपने आत्मा-परमात्मा में प्रतिष्ठित होने का चिंतन, स्मरण, साधना करना चाहिए। यही सार बात है । चाहे एक जगह पर हो अथवा सत्संग के निमित्त विचरण करते हुए हो लेकिन होनी चाहिए आध्यात्मिक खजाने की वृद्धि ।

गुरुओं को, ब्रह्मवेत्ताओं को यदि रिझाना चाहते हो तो आज के दिन उनको एक दक्षिणा जरूर देनी चाहिए। आज अगर तुम संकल्प करके, मन ही मन अर्पण करो कि आज की पूनम से चार मास तक, परमात्मा के नाम का जप-अनुष्ठान करूँगा, किसी आत्मज्ञान-परक ग्रंथ का स्वाध्याय करूँगा, ये चार पूनम को मौन रहूँगा अथवा महीने में दो दिन मौन रहूँगा या आठ दिन मौन रहूँगा । कार्य करते समय पहले अपने को पूछूँगा कि कार्य करने वाला कौन है, और इसका आखिरी परिणाम क्या है ? एवं कार्य करने के बाद कर्त्ता-धर्त्ता सब ईश्वर ही है, कार्य सब ईश्वर की सत्ता से ही होता है । 'मैं तो वही हूँ और वह मैं है। ऐसा स्मरण करूँगा। ऐसा संकल्प आप आज के दिन कर लो । यही संकल्प का दान आपकी दक्षिणा हो जायेगी ।

इस पूनम से चतुर्मास तक आप अपनी क्षमता के अनुसार कोई संकल्प अवश्य करो। आप जितना कर सकते हो उतना ... आप कर तो बहुत सकते हो, आप में ईश्वर का अथाह बल छुपा है । लेकिन पुरानी आदत है कि : 'हमारे से नहीं होगा, हमारे में दमखम नहीं.. ।' इन विचारों को त्याग दो । तुम जो चाहो, वह कर सकते हो । आज के दिन तुम एक संकल्प को पूरा करने के लिए तत्पर हो जाओ तो प्रकृति के वक्षस्थल में छुपा हुआ तमाम भण्डार, योग्यताओं का खजाना तुम्हारे आगे खुलता जायेगा।

तुम्हें अद्भुत शौर्य, पौरुष और सफलताओं की प्राप्ति होगी ।

तुम्हारे रूपये-पैसे, फूल-फल की मुझे आवश्यकता नहीं, लेकिन तुम्हारे और तुम्हारे द्वारा किसी का कल्याण होता है तो बस, मुझे दक्षिणा मिल जाती है, मेरा स्वागत हो जाता है । ब्रह्मवेत्ता गुरुओं का स्वागत तो यही है कि उनके आज्ञापालन में रहें, वे जो चाहते हैं उस ढंग से अपना जीवनयापन करके सदा-सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र को तोड़कर फेंक दें और मुक्ति का अनुभव कर लें ।

जीवों को ज्ञान, शांति, आनंद और प्रेम देने वाले, प्रेम की धारा में नहलाने वाले और प्रेमस्वरूप परमात्मा की अनुभूति करानेवाले ब्रह्मवेत्ता साकार शरीर में हों अथवा निराकार-तत्त्व में लीन हो गये हों, उन सब महापुरुषों को हम सच्चे हृदय से प्रणाम करते हैं । प्रेम के गीत गुँजाकर आप भी तृप्त रहेंगे, औरों को भी तृप्ति के आचमन दिया करेंगे, ऐसा आज से आप व्रत ले लें, यही आसाराम की आशा है ।

ॐ गुरु... ॐ गुरु... ॐ गुरु... ॐ...

गुरु-तत्त्व

प्रश्न : गुरु की पहचान क्या है ?

उत्तर : गुरु की पहचान शिष्य नहीं कर सकता । जो बड़ा होता है, वही छोटे की पहचान कर सकता है । छोटा बड़े की पहचान क्या करे? फिर भी जिनके संग से अपने में दैवी सम्पत्ति आये, आस्तिक भाव बढ़े, साधन बढ़े, अपना अंतःकरण सुधरे, वे हमारे लिए गुरु हैं ।

प्रश्न : गुरु कौन हो सकता है ?

उत्तर : तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुष ही गुरु हो सकते हैं । अतः जब तक तत्त्वज्ञान न हो, भगवत्प्राप्ति न हो, तब तक अपने में गुरु-भाव नहीं लाना चाहिए। हाँ, कोई कल्याण की बात पूछे तो अपने में जितनी जानकारी है उसको सरलता से बता देना चाहिए ।

प्रश्न : गुरु की सेवा क्या है ?

उत्तर : जिससे गुरु के मन की प्रसन्नता हो और वे अपने हृदय की बात प्रकट कर सकें, ऐसा विश्वासपात्र बनना ही गुरु की सेवा है । तत्त्व का सच्चा जिज्ञासु गुरु की सेवा करता है तो उसको तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है । कैसे होती है - इसको तो भगवान ही जानें !

प्रश्न : गुरुकृपा और भगवत्कृपा में क्या भेद ?

उत्तर : दोनों में तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं है। लौकिक दृष्टि से वे दो दिखती हैं, पर वास्तव में एक ही हैं ।

प्रश्न : गुरु की दीक्षा और शिक्षा क्या है ?

उत्तर : जैसा गुरु बतायें, वैसा नियम लेना, व्रत लेना दीक्षा है और उन नियमों का पालन करना, उनके अनुसार अपना जीवन बनाना शिक्षा है। पहले दीक्षा देने के बाद ही शिक्षा दी जाती थी तो वह शिक्षा फलीभूत होती थी, बढ़िया होती थी । परन्तु आज दीक्षा के बिना ही शिक्षा दी जाती है, जिससे शिक्षा बढ़िया नहीं होती।

प्रश्न : विद्यागुरु, दीक्षागुरु और सद्गुरु में क्या अन्तर है ?

उत्तर : जिनसे शिक्षा लेते हैं, विद्या पढ़ते हैं, वे 'विद्यागुरु' हैं । जिनसे यज्ञोपवीत धारण करते हैं, कण्ठी लेते हैं, दीक्षा लेते हैं वे 'दीक्षागुरु' हैं और सत्य-तत्त्व को पाये हुए जो सत्य-तत्त्व का साधन बतायें वे सद्गुरु हैं । सद्गुरु किसी भी वर्ण और आश्रम के हो सकते हैं ।

प्रश्न : गुरुदक्षिणा क्या है ?

उत्तर : अपने-आपको सर्वथा गुरु की शरण में समर्पित कर देना अर्थात् 'मैं' और 'मेरा' न रखना ही गुरुदक्षिणा है ।

मंत्रदीक्षा

गुरु मंत्रदीक्षा के द्वारा साधक की सुषुप्त शक्ति को जगाते हैं। दीक्षा का अर्थ है - दी माना जो दिया जाए। जो ईश्वरीय प्रसाद देने की योग्यता रखते हैं। 'क्षा' माना जो पचाने की योग्यता रखता है। पचानेवाले साधक की योग्यता और देनेवाले गुरु का अनुग्रह इन दोनों का जब मेल होता है तब दीक्षा घटित होती है। गुरु मंत्रदीक्षा देते हैं तो साथ-साथ अपनी संवेदना-शक्ति, अपना संकल्प भी देते हैं। किसान अपने खेत में बीज बो देता है तो अनजान आदमी यह नहीं कह सकता कि बीज बोया हुआ है कि नहीं ? परंतु जब धीरे-धीरे उसकी सिंचाई होती है, उसकी सुरक्षा की जाती है तब अंकुर फुट निकलते हैं और वह जान लेता है कि खेत में बुआई हुई है। ऐसे ही मंत्रदीक्षा के समय हमें जो मिलता है वह पता नहीं चलता कि क्या मिला ? परंतु हम साधन-भजन से उसे सींचते है तब मंत्र-दीक्षा का जो प्रसाद है, बीज-रूप में जो आशीर्वाद मिला है वह पनपता है।

माँ के गर्भ में बालक आ जाता है तो उस समय पता नहीं चलता। १ महीने के बाद माँ को महसूस होता है। तीन-चार महीने के बाद दूसरे लोगों को भी महसूस होता है कि यह माता होने वाली है, गर्भवती है।

दीक्षा तीन प्रकार की होती है : एक शांभवी दीक्षा, दूसरी मंत्रदीक्षा और तीसरी स्पर्शदीक्षा। शांभवी दीक्षा निगाहों के द्वारा दी जाती है। जैसे शुकदेवजी ने कथा के पाँचवे दिन परीक्षित को दी थी। स्पर्शदीक्षा, स्पर्श के द्वारा दी जाती है। मंत्रदीक्षा देनेवाले गुरु का चित्त जिस ऊँचाई पर होता है वैसा ही उस मंत्र का विशेष या कम प्रभाव पड़ता है। कोई निरक्षर आकर तुम्हें कह दे कि 'राम राम जपो' तो इतना गहरा कल्याण नहीं होता। परंतु 'राम-राम' मंत्र रामानंदजी जैसे ब्रह्मवेत्ता के श्रीमुख से निकला है तो उसके श्रद्धा-संयुक्त जप से कबीरजी जैसे सिद्ध हो जाते हैं। मंत्र तो वही था 'राम-राम-राम' परंतु देनेवाले का चित्त पूर्णता तक पहुँचा हुआ था।

चपरासी कोई बात कह देता है तो उसका प्रभाव उतना नहीं होता। वही की वही बात अगर प्रधानमंत्री कह देता है तो उसकी बात का प्रभाव अनेक गुना बन जाता है। आध्यात्मिकता में जो महात्मा ऊँचाई पर पहुँचे हुए होते हैं उनके द्वारा जो मंत्र मिलता है और श्रद्धासहित कोई उसकी साधना करता है तो मंत्र हमारे मन को तार देता है। मंत्र = मनन करे अंतर में, अथवा संसार से मन तर जाये।

मंत्रदीक्षा में मंत्र के अक्षर जितने कम होते हैं और उच्चारण में तालबद्धता होती है उतनी साधक को सुविधा रहती है और वह जल्दी से आगे बढ़ता है।

नारदजी सांप्रदायिक संत नहीं थे। उनके जीवन में सामने वाले की उन्नति मुख्य थी। सामनेवाले की उन्नति जिनके जीवन में मुख्य होती है वे लोकसंत होते हैं। नारदजी ने वालिया लूटेरा को मंत्र दिया उसमें 'रा' लम्बा और 'म' छोटा था। 'वालिया मूलाधार-स्वाधिष्ठान में जीनेवाला आदमी है। 'मरा' मंत्र के जप से उन केन्द्रों में उसके आंदोलन चलेंगे और धीरे-धीरे वह हृदय केन्द्र में पहुँचेगा' ऐसा जानते हुए नारदजी ने मंत्र दिया। देते समय शांभवी दीक्षा का भी दान कर दिया। निगाहों के द्वारा अपनी शक्ति उसमें डाल दी। वही वालिया लूटेरा 'मरा, मरा, मरा' जपने लगा। जप तालबद्ध होते होते उसकी कुंडलिनी शक्ति जाग्रत हुई और वह वालिया लुटेरे में से वाल्मीकि ऋषि बन गया।

गोरख ! जागता नर सेविये

मानव मन की बड़े में बड़ी गल्ती यह है कि वर्तमान सद्गुरु से वह इतना लाभ नहीं ले पाता और

सद्गुरु या इष्ट जब चले जाते हैं, तब उनके नाम के मंदिरों एवं आश्रमों का निर्माण करता है। मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि उपस्थित सद्गुरु की शरण लेकर, उनके उपदेशों को मानकर अपना कल्याण कर ले।

जीसस जब जीवित थे तब लोगों ने उनको पत्थर मारे और क्रॉस पर चढ़ा दिया। सुकरात जब जीवित थे तब लोगों ने उन्हें जहर पिलाया। भगवान राम के गुरु वशिष्ठजी महाराज जब बाजार में से निकलते तब लोग उनके लिए कुछ का कुछ बोलते। वशिष्ठजी महाराज कहते थे : "हे रामजी ! मैं जब बाजार से गुजरता हूँ तब मूर्ख लोग मेरे लिए क्या बोलते हैं यह मुझे पता है। परन्तु मेरा दयालु स्वभाव है। मैं उन्हें माफ कर देता हूँ।"

लीलाशाह बापू जब साकार रूप में थे तब उनके आदिपुर आश्रम में, सत्संग में केवल सौ-दो सौ लोग आते थे। किन्तु उनके ब्रह्मलीन होने के पश्चात् पाँच-पाँच, दस-दस हजार लोग उनका जय-जयकार करते हैं। गुरु नानक जब विद्यमान थे तब उनके शिष्यों को खाने तक की तकलीफ सहनी पड़ती थी और आज उनके नाम के करोड़ों-अरबों रूपयों के मंदिर बनते हैं और लाखों रूपयों का प्रसाद बाँटा जाता है।

गुरु गोरखनाथ ने कहा है :

'गोरख ! जागता नर सेविये।'

धन्य हैं वे लोग कि जो जीवित महापुरुषों का सान्निध्य पाकर सेवा और साधना के मार्ग पर दृढ़ता से चलते हैं।

स्वागतगीत

इन्द्रप्रस्थ नगरी में स्वागत बापू आसाराम का।
हरिओम गुँजार हुआ मिटे तिमिर मोह अज्ञान का।
मंगल चरण पड़े दिल्ली में धरा हुई है स्वर्ग समान।
भूले भटके जीवों का तुम करने आये हो कल्याण।
लीलाशाह का ज्योतिपुंज यह हो...हो..
लीलाशाह का ज्योतिपुंज यह सरोज मोटेराधाम का।
हरि ॐ..

आज विश्व को देने आये शांति का सन्देश है।
हर प्राणी से प्रेम करो मेरे बापू का उपदेश है।
पाप ताप संताप हरो हो... हो..
पाप ताप संताप हरो करो निर्मल मन इन्सान का।
हरि ॐ..

कभी कबीर कभी गौतम गांधी नानक और ज्ञानेश्वर हो
तुलसी मीरा शुक व्यास मुनि कभी सांई सर्वेश्वर हो
मंगल भवन अमंगलहारी हो... हो..
मंगल भवन अमंगलहारी भाव मेरे मन प्राण का।
हरि ॐ ..

ले संकल्प के इस धरती पे सद्भावना की ज्योत जगे।
हर प्रभात हो मंगलकारी होठों पे मंगल गीत सजे।
लाल किले के प्रांगण में हो... हो..
लाल किले के प्रांगण में उद्घोष हुआ हरि नाम का।
हरि ॐ..

पुण्य हमारे प्रगट हुए जो पूर्ण ब्रह्म पधारे हैं।
वन उपवन मन हुआ प्रफुल्लित अंतर मन उजियारे हैं।
आँखें तृप्त हुई कर दर्शन हो... हो..
आँखे तृप्त हुई कर दर्शन भाग है 'स्नेही' नादान का।
हरि ॐ..

(पेज २९ से जारी...)

से ठंडक मिलती है और नींद भी अच्छी आती है।

लौकी का तेल बनाने का तरीका

सवा किलो लौकी के छिलके उतारकर, उसे पीसकर उसका पानी निकाल लें। २५० ग्राम नारियल अथवा तिल के तेल को उबालने रखें। आँच धीमी करके सवा किलो लौकी में से जो पानी निकला हो उसे गरम तेल में डालें। जब तक पानी सूख न जाये तब तक उबालते रहें। जब सारा पानी जल जाये तब तेल को उतारकर ठण्डा होने के लिए रख दें। यह तेल बादाम के तेल का छोटा भाई कहलाता है।

शबरी भीलनी की गुरुभक्ति

शबरी भीलनी का नाम हम सभी जानते हैं। यह शबरी भीलनी पूर्वजन्म में महारानी थीं। एकबार वे राजा के साथ कहीं यात्रा पर गयी थीं। वहाँ से वापस लौटते वक्त रास्ते में उन्होंने एक गाँव की चौपाल पर, एक चबूतरे पर बैठकर किसी संतपुरुष को सत्संग करते देखा। गाँव के कुछ लोग वहाँ बैठकर उनका सत्संग सुन रहे थे।

महारानी ने राजा से कहा : ''यात्रा में मंदिर के भगवान के दर्शन तो किये, किन्तु जिन संत के हृदय में से भगवान बोलते हैं उन भगवान की वाणी भी सुनते जायें।''

राजा : ''हम लोग राजपरिवार के व्यक्ति हैं। हमें आमंत्रण दिया गया हो, साथ में छत्र हो, चँवर हो, बैठने के लिए सिंहासन हो तो ही हम जा सकते हैं। हम तो राजाधिराज हैं, हमको साधारण लोगों के बीच बैठना शोभा नहीं देता।''

रानी : ''अब ये सब चर्चाएँ छोड़कर आप रथ खड़ा रखिए। आज निर्जला ग्यारस है और सत्संग के दो वचन सुनने का मौका मिला है तो उसका लाभ ले लें।''

किन्तु राजा को यह अच्छा न लगा। उसने रानी की बात न मानी और रथ को आगे चलाने की आज्ञा दे दी। जिसकी बुद्धि सात्त्विक नहीं होती उसे अच्छी बातें नहीं सूझती। जिसको शराब पीने की अथवा अन्य कोई खराब आदत पड़ गयी हो उसकी बुद्धि तो इतनी स्थूल हो जाती है कि यदि दूसरा कोई अच्छी बात समझाये तो भी उसकी समझ में नहीं आती और यदि थोड़ी समझ में आ भी जाये तो उसके अनुसार कर नहीं सकता।

महारानी को हुआ कि 'जो संतपुरुषों के सत्संग और दर्शन से वंचित रखे ऐसा रानी का पद किस काम का है ? ऐसा महारानी का पद मुझे नहीं चाहिए। ऐसे हीरे-जवाहरात और शृंगार मुझे नहीं चाहिए।'

मीराबाई भी कहती थी कि :

हुं तो नहीं जाऊँ सासरिये मोरी मा,
मारुं मन लाग्युं फकीरीमां।
मोतीओनी माळा मारे शा कामनी,
हुं तो तुलसीनी कंठी पहेरुं मोरी मा।
मारुं मन...
महेल अने माळियां मारे नहीं जोईए,
हुं तो जंगलनी झूंपड़ीमां रहुँ मोरी मा।
मारुं मन...

अर्थात् 'हे माँ ! मैं तो ससुराल नहीं जाऊँगी। मुझे मोतियों की माला से क्या काम ? मैं तो तुलसी की माला पहनूँगी। बड़े-बड़े महल मुझे नहीं चाहिए। मैं तो जंगल की झोंपड़ी में रह लूँगी। किन्तु ससुराल नहीं जाऊँगी क्योंकि मेरा मन तो फकीरी में लगा हुआ है।'

महारानी ने प्रभु से प्रार्थना की कि, ''हे प्रभु ! मेरा दूसरा जन्म हो तो ऐसा जुलम न हो, ऐसी तू दया करना। हीरे और मोती पहनूँ किन्तु अपनी काया का कल्याण न कर सकूँ, आत्मा की उन्नति न कर सकूँ तो मेरा जीवन व्यर्थ है। हे प्रभु ! मुझे दूसरा जन्म भले किसी साधारण भील के घर मिले, भले मैं भीलनी कहलाऊँ किन्तु गुरु के द्वार पर जाकर तेरा भजन करूँ और तुझे पाने का यत्न कर सकूँ, ऐसी दया करना।''

वही महारानी दूसरे जन्म में शबरी भीलनी हुई। मतंग ऋषि के आश्रम में रहकर सेवा करने लगी। शबरी आश्रम को झाड़-बुहार कर स्वच्छ करती, पेड़-पौधों में पानी सींचती और दूसरी भी कई छोटी-बड़ी सेवाएँ करती एवं हरि का स्मरण करती।

गुरु ने उससे कहा था कि 'एक दिन राम अवश्य यहाँ आयेंगे।' तब से वह बड़े धैर्य एवं प्रेम से राम के आने की राह देखती।

सरोवर कांठे शबरी बेठी...
सरोवर कांठे भीलण बेठी...
धरे रामनुं ध्यान।
एक दिन आवशे स्वामी मारा
अंतरना आराम...
राम-राम रटतां शबरी बेठी...
हैये राखी हाम।
गुरुनां वचनो माथे राखी...
ऋषिनां वचनो माथे राखी...

हैये धरती ध्यान ।
राम राम रटतां शबरी बैठी...
हैये राखी हाम ।

कभी वह सरोवर के किनारे बैठकर ध्यान करती तो कभी किसी वृक्ष पर चढ़कर राम के आने की राह देखती । शाम को वृक्ष से थोड़ी आशा-निराशा के साथ नीचे उतरती किन्तु हतोत्साहित न होती ।

संसार से विदा लेते समय गुरुजी ने कहा था कि, 'शबरी ! एक दिन राम जरूर यहाँ आयेंगे ।' अतः गुरु के वचनों को शबरी ने सिर-माथे पर रखा है । अविश्वास के साथ पूछा नहीं कि 'कब आयेंगे ? आयेंगे कि नहीं ? सत्य कहते हैं कि असत्य ?...' उसे तो 'राम अवश्य आयेंगे' ऐसा विश्वास है ।

महारानी में से शबरी भीलनी बनी उस शबरी की आत्मा कितनी दिव्य होगी और श्रीराम के दर्शन की कैसी तत्परता होगी !

रोज आश्रम की सफाई करे, नये फल-फूल तैयार करे और श्रीराम के आने की राह देखे । अत्यंत सादा एवं सात्त्विक जीवन जिये और श्रीराम के दर्शन की आतुरता में अपना दिन बिताये । यही उसका जीवनक्रम हो गया ।

जब श्रीरामजी ने कबंध राक्षस के पास से शबरी के विषय में सुना तब वे सीता को ढूँढना भूल गये और उन्हें शबरी के आँगन में पहुँचने की आतुरता हो उठी ।

राम और भरत का भ्रातृप्रेम विख्यात है किन्तु शबरी ने प्रेम की एक नवीन ध्वजा फहरायी है । प्रेम तो स्वतंत्र है । प्रेम यदि खून के संबंध में रुक जाता है तो मोह कहलाता है और रूपयों के संबंध में अटक जाता है तो लोभ कहलाता है । किन्तु केवल प्रेम के लिए ही प्रेम होता है तब परमात्मा प्रकट हो जाता है ।

शबरी के प्रेम के कारण राम का प्रेम जाग्रत हुआ है । श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा : ''अब सीता की खोज फिर करेंगे । पहले तो मुझे शबरी के प्रांगण में जाना है ।''

श्रीरामचंद्रजी को जो कोई भी मिले उससे शबरी का पता पूछते-पूछते पगडण्डियों पर से शबरी के द्वार की ओर जा रहे हैं ।

इधर शबरी ने पेड़ के ऊपर से दूर तक दृष्टि डालकर देखा तो तीर-कमान के साथ आते हुए श्रीराम-लक्ष्मण दिखे । तब उसे लगा कि 'निश्चय ही ये दोनों भाई मेरे राम-लखन ही होंगे ।'

उसे भावसमाधि लग गई । आज तक तो वह डालियाँ पकड़कर नीचे उतरती थी । आज मानो वृक्ष उसे पकड़कर नीचे उतार रहा हो, ऐसा लगा । योगियों का कहना है कि जब तुम्हारी भावसमाधि लगती है तब तुम्हारे प्राण ऊर्ध्वगामी हो जाते हैं । तुम्हारी आँख बन्द हो और तुम कहीं ऊँचाई से गिर पड़ो तो भी तुम्हारे शरीर को चोट नहीं लगती ।

एकबार बुद्ध भगवान किसी पर्वत पर बैठे थे और एक बड़ी शिला पर्वत पर से लुढ़कती-लुढ़कती आयी । बुद्ध जहाँ बैठे थे वहाँ से थोड़ी दूर के अंतराल से शिला के दो टुकड़े हो गये । एक टुकड़ा दायीं ओर गिरा एवं दूसरा बायीं ओर । केवल एक छोटा-सा कंकर बुद्ध के पैर में लग गया । शिष्यों द्वारा उस विषय में पूछने पर बुद्ध ने कहा : ''मेरी ध्यान की तल्लीनता में जरा-सी कमी रह गई होगी तभी यह छोटा-सा कंकर पैर में लगा, अन्यथा यह भी न लगता।''

तुम जितने अंश में ईश्वर में तल्लीन होगे उतने ही अंश में तुम्हारे विघ्न और परेशानियाँ अपने-आप दूर हो जायेंगी और जितने तुम अहंकार में डूबे रहोगे उतने ही दुःख, विघ्न और परेशानियाँ बढ़ती जायेंगी ।

शबरी पेड़ पर से नीचे उतरी । उसने श्रीराम की चरणवंदना कर के प्रार्थना की : ''हे प्रभु ! मेरा आँगन पावन कीजिए ।''

श्रीराम ने कहा : ''शबरी ! मेरे आने में विलम्ब हुआ है, मुझे क्षमा करना ।''

शबरी के पवित्र प्रेम के कारण प्रभु ने क्षमा माँगी है । प्रेम एकांगी नहीं हो सकता वरन् परस्पर होता है । जिस व्यक्ति को तुम प्रेम करते हो, उसके हृदय में तुम्हारे लिए नफरत ही पैदा होगी । जिसके लिए तुम बुरा चाहोगे, उसके मन में भी तुम्हारे लिए बुरे भाव ही आयेंगे और जिसके लिए तुम अच्छाई चाहोगे उसके मन में भी तुम्हारे

लिए अच्छे विचार आयेंगे, आयेंगे और आयेंगे ही।

शबरी ने भगवान की आतुरतापूर्वक राह देखी और रामजी आये। शबरी ने श्रीरामजी का पूजन किया और रोज की तरह जो फल, फूल कंदमूल श्रीरामजी के लिए संभालकर रखे थे वे श्रीरामजी को दिये। उसने झूठे बेर तक श्रीरामजी को खाने के लिए दिये।

श्रीरामजी को उस प्रेम की मधुरता का ऐसा स्वाद लगा कि सीताजी की सेवा और कौशल्याजी का वात्सल्य भरा भोजन तक वे भूल गये।

श्रीरामजी ने लक्ष्मण से कहा : ''लक्ष्मण! आज तक भोजन तो बहुत किया किन्तु ऐसा भोजन तो कभी मिला ही नहीं।''

श्रीकृष्ण तो लीला करते हैं किन्तु श्रीरामजी विनोद में भी झूठ नहीं बोलते। लक्ष्मणजी ने श्रीराम की ओर देखा एवं 'यह तो भीलनी के झूठे बेर हैं' ऐसा भाव उनके मन में आया। श्रीरामजी को हुआ कि इस प्रेमसरिता के पावन आचमन के बिना, इस पवित्र प्रसाद को लिये बिना लक्ष्मण रह जायेगा। अतः श्रीराम ने एक मुट्ठी भरकर बेर लक्ष्मणजी को दिये और कहा : ''लक्ष्मण! ये बेर तुम खा लो। देखो, कितने मीठे हैं।''

लक्ष्मणजी ने श्रीराम की आज्ञा मानी और बेर खाये। लक्ष्मण और श्रीरामजी शबरी को देखते हैं, उसकी झोंपड़ी को देखते हैं। लक्ष्मण को तो शबरी का एवं झोंपड़ी का बाह्य आकार दिखता है किन्तु श्रीरामजी को तो शबरी में अपना स्वरूप ही दिखता है क्योंकि श्रीराम की दृष्टि ज्ञानमयी है।

तुम जितने अंश में ईश्वर में तल्लीन होगे उतने ही अंश में तुम्हारे विघ्न और परेशानियाँ अपने-आप दूर हो जायेंगी और जितने तुम अहंकार में डूबे रहोगे उतने ही दुःख, विघ्न और परेशानियाँ बढ़ती जायेंगी।

लक्ष्मणजी ने शबरी से पूछा : ''इस घोर अरण्य में तुम अकेली रहती हो? मतंग ऋषि का देहावसान हुए तो काफी समय हो चुका है।''

शबरी ने कहा : ''मैं अकेली नहीं हूँ। यहाँ आश्रम में हिरण हैं, मोर हैं और सर्प भी विचरण करते हैं। उनके रूपों में मेरे श्रीराम ही हैं। उनके रूपों में जब श्रीराम मेरे साथ हैं तो मैं अकेली कैसे कहलाऊँ? एक ही राम सब में बस रहे हैं तो डर किसका और डर किससे हो?''

शबरी की भक्ति अब वेदांत में पलटी है। सेवा अब सत्य में पलटी है। वही बुद्धि अब ऋतम्भरा प्रज्ञा में पलटी है। ज्ञानी गुरु की सेवा फली है। क्षीराम और शबरी का वार्तालाप हुआ है जिसे लक्ष्मण ने सुना। तब उन्हें लगा कि भरतमिलन तो मैंने देखा है किन्तु यह शबरीमिलन तो उसकी अपेक्षा भी अनोखा है।

शबरी की भक्ति अब वेदांत में पलटी है। सेवा अब सत्य में पलटी है। वही बुद्धि अब ऋतम्भरा पज्ञा में पलटी है। ज्ञानी गुरु की सेवा फली है।

भरतजी का तो आग्रह था, प्रार्थना थी कि 'श्रीराम! आप अयोध्या चलिए।' शबरी की तो कोई प्रार्थना नहीं है। वह रहने के लिए भी नहीं कहती है और कहीं जाने के लिए भी नहीं कहती है। अब शबरी, शबरी नहीं रही और श्रीराम, श्रीराम नहीं रहे, दोनों एक हो गये हैं।

जैसे एक कमरे में दो दियों का प्रकाश हो तो किस दिये का कौन-सा प्रकाश है? यह पहचानना और उसे अलग करना संभव नहीं है। ऐसा ही शबरी एवं श्रीराम का प्रेम-प्रकाश है और दोनों के प्रकाशपुंज में लक्ष्मणजी नहा रहे हैं।

कुछ समय पश्चात् शबरी श्रीराम एवं लक्ष्मणजी को आश्रम बताने के लिए ले गयी और 'यहाँ मेरे गुरेदेव

रहते थे, यहाँ मेरे गुरुदेव ने तपस्या की थी, यहाँ मेरे गुरुभाई रहते थे' ऐसा कहकर सब स्थान बताये ।

घूमते-घामते एक जगह लक्ष्मणजी को रस्सी पर किसी साधु पुरुष के कपड़े सूखते हुए दिखे। मानो अभी-अभी स्नान करके किसीने कपड़े सुखाने के लिए डाले हों, ऐसे गीले कपड़े देखकर लक्ष्मणजी को आश्चर्य हुआ कि शबरी अकेली रहती है और यहाँ पर ये धोती, लंगोटी आदि किसी साधु पुरुष के कपड़े कैसे सूख रहे हैं ?

ऐसे गीले कपड़े देखकर लक्ष्मणजी को आश्चर्य हुआ कि शबरी अकेली रहती है और यहाँ पर ये धोती, लंगोटी आदि किसी साधु पुरुष के कपड़े कैसे सूख रहे हैं?

श्रीलक्ष्मणजी के संदेह को निवृत्त करने के लिए श्रीरामजी ने कहा : ''शबरी के गुरुदेव स्नान करके ध्यान में बैठे और ध्यान में ही महासमाधि को प्राप्त हो गये । वर्षों बीत जाने पर भी शबरी को ऐसा ही लगता है कि उसके गुरुजी यहीं हैं । शबरी के मन की भावना के कारण हवा एवं सूर्य की किरणों ने अपना स्वभाव बाधित किया है और कपड़े अभी तक वैसे के वैसे ही हैं ।''

इस बात को सुनकर शबरी को पूर्वस्मृति ताजी हो उठी । 'शबरी ! तुम्हारे द्वार पर श्रीराम आयेंगे।' गुरु का वचन याद आ गया । श्रीराम आये, साकार राम के तो दर्शन हुए ही, साथ ही साथ रामतत्त्व में विश्रांति भी मिली । शबरी का संकल्प पूरा हुआ । रस्सी पर के गीले कपड़ों पर जो भावना थी वह विलीन हो गई। थोड़ी तात्त्विक चर्चा हुई । इतने में तो कपड़े सूखकर नीचे गिर पड़े ।

'ओह... गुरुदेव ! आपने अपनी नश्वर देह छोड़ दी ! अब मुझे भी आपके चिदाकाश स्वरूप में ही विलीन होना है । शबरी का मस्तक श्रीरामजी के चरणों में गिर पड़ा । श्रीराम-लखन के पावन हाथों से शबरी की अंत्येष्टि हुई ।

धन्य है शबरी की गुरुभक्ति !

गुरुभक्तियोग

१. गुरुभक्तियोग की फिलासफी का व्यावहारिक स्वरूप यह है कि गुरु को अपने इष्टदेवता से अभिन्न मानें ।

२. गुरुभक्तियोग ऐसी फिलासफी नहीं है जो पत्र-व्यवहार या व्याख्यानों के द्वारा सिखाई जा सके । इसमें तो शिष्य को कई वर्ष तक गुरु के पास रहकर शिस्त एवं संयमपूर्ण पवित्र जीवन बिताना चाहिए, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए एवं गहरा ध्यान करना चाहिए ।

३. गुरुभक्तियोग सर्वोत्तम विज्ञान है ।

४. गुरुभक्तियोग अमरत्व, परम सुख, मुक्ति, सम्पूर्णता, शाश्वत आनन्द और चिरंतन शान्ति प्रदान करता है ।

५. गुरुभक्तियोग का अभ्यास सांसारिक पदार्थों के प्रति निःस्पृहता और वैराग्य प्रेरित करता है तथा तृष्णा का छेदन करता है एवं कैवल्य मोक्ष देता है ।

६. गुरुभक्तियोग का अभ्यास भावनाओं एवं तृष्णाओं पर विजय पाने में शिष्य को सहायरूप बनता है, प्रलोभनों के साथ टक्कर लेने में तथा मन को क्षुब्ध करनेवाले तत्त्वों का नाश करने में सहाय करता है । अन्धकार को पार करके प्रकाश की ओर ले जानेवाली गुरुकृपा प्राप्त करने के लिए शिष्य को योग्य बनाता है ।

७. गुरुभक्तियोग का अभ्यास आपको भय, अज्ञान, निराशा, संशय, रोग, चिन्ता आदि से मुक्त होने के लिए शक्तिमान बनाता है और मौक्ष, परम शान्ति और शाश्वत आनन्द प्रदान करता है ।

८. गुरुभक्तियोग गुरुकृपा के द्वारा प्राप्त सचोट, सुन्दर अनुशासन का मार्ग है ।

(क्रमशः...)
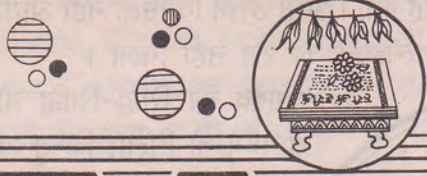
चाँगदेव और ज्ञानेश्वर

चाँगदेव, गुरु के आश्रम में जो ताप्ती नदी के किनारे पर था, पढ़ते थे । जब शास्त्र-विद्या पढ़कर गुरु से विद्या ले रहे थे तब चाँगदेव ने गुरुजी से पूछा :

''गुरु महाराज ! मुझे और क्या पढ़ना चाहिए ? अब क्या बाकी है ?''

गुरु ने कहा : ''तूने लौकिक विद्या तो पढ़ ली । अब तुझे योगविद्या सीखनी चाहिए और आध्यात्मिक विद्या का अनुभव करना चाहिए । तभी मनुष्य-जन्म की सार्थकता है ।''

आप पी. एच. डी. हो गये, आई. ए. एस. हो गये, चाहे दुनिया के और कुछ भी हो गये लेकिन जब तक आपने योगविद्या का अभ्यास नहीं किया, आध्यात्मिक विद्या का अभ्यास नहीं किया तब तक सब दुःख सदा के लिए दूर नहीं होंगे ।

गुरु महाराज ने कहा : ''चाँगदेव ! तुम्हें योगविद्या और आत्मविद्या पानी चाहिए । योगविद्या के लिए तुम काशी चले जाओ और अमुक जगह पर तुम्हें योगी मिलेंगे ।''

पयोष्णी और तापी के संगम पर गुरु महाराज का आश्रम था और वहाँ से विद्या पाकर चाँगदेव पहुँच गये काशी । काशी में जाँच करने के बाद पता चला कि काशी में एक ऐसे सिद्धयोगी रहते हैं जिन्होंने रामनाम की औषधि चौथी भूमिका में पहुँचकर पा ली है ।

रामनाम की औषधि खरी नियत से खाय ।
अंगरोग व्यापे नहीं महारोग मिट जाय ॥

रामनाम का जप चार प्रकार से होता है । पहले हम जोर-जोर से राम-राम करते हैं उसको बोलते हैं वैखरी जप । वैखरी अर्थात् वाणी से जप करना । इससे वातावरण में और रक्त के कणों में थोड़ा फायदा होता है । वैखरी जप थोड़ा परिपक्व होने के बाद मध्यमा में आता है ।

मध्यमा क्या होता है ? वैखरी से जप करने से फिर वह मंत्र गहरा हो जायेगा । वैखरी से जप करते-करते मन के गहरे स्थल में आ जाते हो उसको मध्यमा बोलते हैं ।

मध्यमा में जप परिपक्व होते-होते पश्यन्ति में आ जाता है, पश्यन्ति वाला परा में आता है तो राम शब्द का 'र' बोलो, चाहे संकल्प मात्र करो तो आपके संकल्प में अद्‌भुत सामर्थ्य होता है और यही कारण था कि सती अनसूया ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को नन्हे-मुन्ने बालक बना दिया । शांडिली ने सूर्य की गति को रोक दिया ।

तो वे महात्मा, जिनके पास चाँगदेव पहुँचे थे, वे वैखरी से मध्यमा, मध्यमा से पश्यन्ति और पश्यन्ति से परा में पहुँचे हुए थे और समाधि तक का सामर्थ्य उनमें था ।

लोगों ने चाँगदेव को कहा था : ''महाराज ! वहाँ जाना कठिन है । उस अरण्य में हिंसक प्राणी बहुत हैं ।'' लेकिन चाँगदेव हिम्मत करके संत के दर्शन के लिए पहुँच गये । पहुँच गये तो बाबाजी ने थोड़ी आनाकानी की, थोड़ी-बहुत कसौटी की । चाँगदेव ने कहा : ''महाराज ! कुछ भी हो जाय, योग की विद्या तो आपसे ही लूँगा । मैं निगुरा होकर पैदा तो हुआ लेकिन निगुरा होकर नहीं मरूँगा ।''

निगुरे का नहीं कहीं ठिकाना ।
चौरासी में आना जाना...

निगुरा व्यक्ति बाहर से समझता है कि 'मैं बड़ा चतुर हूँ ।' लेकिन भीतर से उसके दिल-दिमाग पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि छाया रहता है । संसार की दृष्टि से तो वह बड़ा साहब दिखता है किन्तु राम-नाम के धंधे में ठनठनपाल है ।

चाँगदेव ने महात्मा से योगदीक्षा ली और साधन-

भजन किया । योग में वे इतने समर्थ हो गये, उनका सामर्थ्य इतना बढ़ गया कि हजारों लोग उनके शिष्य हो गये । फिर तापी नदी के किनारे आकर उन्होंने अपना छोटा-सा आश्रम बनाया । वहाँ वे ध्यान-भजन करते और लोगों को योगमार्ग का उपदेश देते ।

चाँगदेव देखते कि सौ वर्ष की आयु पूरी होने को है, अब कुछ ही दिनों में मरनेवाला हूँ उस समय वे दस दिन समाधि में बैठ जाते और सहस्रार में प्राण ले आते । जैसे फाँसी का समय निकल जाने पर मुजरिम को फाँसी नहीं लगती, ऐसे ही मृत्यु का समय निकल जाता, फिर वे दो दिन के बाद समाधि से उतरते और सौ वर्ष की उनकी आयुष्य का नवीनीकरण (रिन्यु) हो जाता । जब सौ साल पूरे हो जाते तो फिर से दस दिन की समाधि लगा देते। ऐसा करते-करते उन्होंने चौदह बार मृत्यु को पीछे धकेला ।

निगुरा व्यक्ति बाहर से समझता है कि 'मैं बड़ा चतुर हूँ ।' लेकिन भीतर से उसके दिल दिमाग पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि छाया रहता है ।

उनकी उम्र १४०० वर्ष हो गयी । फिर उन्होंने देखा कि अभी ज्ञानेश्वर महाराज का अवतार होगा । जब उन्होंने ज्ञानेश्वर महाराज की प्रशंसा सुनी और पत्र लिखने को बैठे तो सोचने लगे कि संबोधन क्या करूँ ? 'परम पूज्य गुरुदेव', ऐसा भी नहीं लिख सकते क्योंकि हम १४०० वर्ष के हैं और वे २२ वर्ष के हैं । किन्तु उनसे ज्ञान भी तो पाना है । उन्होंने कोरा कागज ही भेज दिया । उन्होंने सोचा : गुरु महाराज हैं, समर्थ होंगे तो समझ जायेंगे कि मैं उनसे कुछ लेना चाहता हूँ ।

''१४०० वर्ष की आपकी उम्र हो गयी किन्तु १४०० वर्ष में भी आप कोरे ही रहे ।''

वह पत्र लेकर चाँगदेव का शिष्य पहुँचा संत ज्ञानेश्वर के पास । ज्ञानेश्वर ने वह कोरा कागज मुक्ताबाई को दिया कि यह कागज भेजा है चाँगदेव ने । मुक्ताबाई जोर से हँसी : ''चौदहसौ वर्ष का बूढ़ा अभी कोरे का कोरा रह गया । अभी उसमें विनम्रता नहीं आयी क्योंकि आत्मज्ञान का रस नहीं मिला ।''

चाँगदेव को रिद्धि-सिद्धि तो मिली सामर्थ्य तो मिला, किन्तु आत्मज्ञान अभी तक नहीं मिला । सामर्थ्य एकाग्रता से आता है । एकाग्रता से संकल्प की सफलता भी होती है । किन्तु आत्मज्ञान जब तक नहीं मिलता तब तक परब्रह्म परमात्मा प्रगट नहीं होता ।

मुक्ताबाई ने पत्र के जवाब में लिखा : ''१४०० वर्ष की आपकी उम्र हो गयी किन्तु १४०० वर्ष में भी आप कोरे ही रहे ।''

चाँगदेव को फिर ज्ञानेश्वर से मिलने की इच्छा हुई । अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करने के उद्देश्य से चाँगदेव ने सिंह को सवारी और सर्प को चाबुक बनाया और अपने एक हजार शिष्यों का टोला लेकर ज्ञानेश्वर से मिलने चले ।

जब ज्ञानेश्वर को पता चला कि चाँगदेव सिंह पर सवार होकर मुझसे मिलने आ रहे हैं तो उनका स्वागत करने के लिए, ज्ञानेश्वर महाराज जिस चबूतरे पर बैठे थे उसीको चाँगदेव के पास चलने की आज्ञा दी ।

चबूतरे पर ज्ञानेश्वर महाराज को आते देखकर चाँगदेव का अभिमान उतर गया । वे समझ गये कि मैंने तो हिंसक पशुओं को वश किया है किन्तु ये ज्ञानेश्वर महाराज तो जड़ चबूतरे को भी चला सकते हैं । चाँगदेव ने ज्ञानेश्वर महाराज को प्रणाम किया एवं उनके शिष्य बन गये ।

ज्ञानेश्वर महाराज की कृपा से कृतार्थ होकर चाँगदेव आत्म-साक्षात्कारी हो गये । कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे कितना भी जप, तप, भजन आदि कर लो, योग की साधना कर लो, रिद्धि-सिद्ध भी पा लो, किन्तु जब तक आत्मवेत्ता, ब्रह्मज्ञानी गुरु की मुलाकात नहीं

होती तब तक जीव को उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, भीतर का आत्मरस प्रगट नहीं होता। सच्चे सुख, आत्मरस का प्रागट्य तो संतों की, ब्रह्मवेत्ताओं की कृपा से ही संभव है ।

भगवान बुद्ध की भिक्षा

भगवान बुद्ध के पास एक सेठ आया और बोला :

''भन्ते ! मेरे पास बहुत-सी जायदाद है, कई हवेलियाँ हैं । किन्तु मुझे शांति नहीं मिलती, आनंद नहीं मिलता और सदा मृत्यु का भय लगा रहता है। मैंने सुना है जब मनुष्य के पाप कटते हैं और वह मृत्यु से पार हो जाता है, तब उसको सुख-शांति मिलती है। कृपया मुझे भी आप सुख-शांति का दान करें।''

बुद्ध बोले :''जरूर करूँगा । लेकिन साधु की सेवा किये बिना ज्ञान टिकेगा नहीं । ज्ञान तो किताबों में भी भरा पड़ा है किन्तु बिना सेवा के हृदय में टिकता नहीं । अतः कुछ सेवा करो ।''

सेठ : ''भन्ते ! क्या सेवा करूँ ?''

बुद्ध : ''मुझे भोजन कराओ ।''

सेठ : ''अरे ! आप जैसे संत हमारे घर भोजन करें इससे बढ़कर हमारा और सौभाग्य क्या हो सकता है ? भन्ते ! आप अवश्य हमारे यहाँ भोजन पाइयेगा।''

बुद्ध : ''कल भिक्षा करने के लिए तुम्हारे घर आऊँगा ।''

सेठ तो राजी-राजी हो गया । खीर-पूरी-हलवा आदि पकवान बनवाये । सुबह से तैयारी में लग गया। 'आज तो भगवान बुद्ध मेरे द्वार पर भिक्षा लेने आने वाले हैं । मेरा तन, मन, धन सार्थक हो गया । मेरा घर पावन हो गया । संत मेरे घर की वस्तु स्वीकारेंगे। जो शान्त आत्मा हैं उनकी सेवा मुझे मिल रही है ।' सेठ की खुशी का तो पारावार न था । और बात भी सच है । संत द्वार पर भिक्षा ग्रहण करें इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है ?

साधारण व्यक्ति जब खाता है तो उसमें से जो रस बनता है वह काम में, क्रोध में, लोभ में, अहंकार में, मोह में खर्च होता है । योगी जब खाता है तो योग में खर्च होता है । लेकिन ज्ञानी जब किसी वस्तु का सेवन करते हैं तो वह ब्रह्मरस में परिणत हो जाता है। भगवान को पाए हुए संत की सेवा यह तो भगवान की सेवा है । सेठ खुश-खुश हो रहा था ।

बुद्ध जब भिक्षा लेने निकले उस समय उनके हाथ में भिक्षापात्र था । भिक्षापात्र में इन्होंने गोबर भर लिया और पहुँचे उस सेठ के द्वार पर और कहा : ''लाओ भिक्षा ।''

सेठ : ''भन्ते ! आपके भिक्षापात्र में तो गोबर भरा है ।''

बुद्ध : ''कोई बात नहीं । लाओ खीर, डालो इसमें ।''

सेठ : ''भन्ते ! इसमें तो मैं पकवान डाल नहीं सकता । लाइए, पहले मैं यह पात्र साफ कर दूँ ।''

बुद्ध : '' नहीं, नहीं, तुम खीर और पकवान डालो ।''

सेठ : '' भन्ते ! खीर और पकवान इसमें कैसे रह सकते हैं ! वे भी गोबर से खराब हो जायेंगे ।''

बुद्ध : ''तू चार पैसे की खीर इस पात्र में नहीं डाल सकता तो फिर मैं अमूल्य आत्मशांति का रस तेरे विकारों से भरे खोपड़े में कैसे डाल दूँ । तूने संसार का कचरा इतना भर दिया है कि मैं अब योग का अमृत भरूँ तो भरूँ कहाँ ? मेरे-तेरे, काम, क्रोध, लोभ, मोह से हृदय को तूने इतना गंदा कर दिया है कि उसमें प्रभु के रस को भरने की जगह ही कहाँ है ?''

तब सेठ समझ गये कि बुद्ध भोजन के लिए नहीं आये थे, लेकिन मुझे असली भोजन पचाने की योग्यता का उपदेश देने के लिए मेरे घर आये थे ।

एक साधे सब सधै....

उद्दालक ऋषि का पुत्र श्वेतकेतु गुरुगृह से सब विद्याएँ पढ़कर आया । आकर उसने अपने पिता को दंडवत् प्रणाम किया ।

उद्दालक ने पूछा : ''बेटा ! तू सब विद्याएँ पढ़कर आया है । किन्तु जिस एक को जानकर सभी जाना

जा सकता है उसे जानकर आया ?''

श्वेतकेतु : ''हाँ, पिताजी ! मैंने न्यायशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैदिकशास्त्र, दर्शनशास्त्र और दूसरे कई शास्त्रों का अध्ययन किया है और बहुत ऊँचा ज्ञान पाकर आया हूँ ।''

उद्दालक ने पुनः पूछा : ''जिससे सब जाना जाता है उसे तू जानकर आया ?''

श्वेतकेतु : ''पिताजी ! जिस एक को जानने से सब जाना जा सके, जिससे सब जाना जाता है ऐसा क्या है ? उसे मैं नहीं जानता ।''

उद्दालक : ''जा, उसे जानकर आ ।''

''बेटा ! तू सब विद्याएँ पढ़कर आया है । किन्तु जिस एक को जानकर सभी जाना जा सकता है उसे जानकर आया ?''

श्वेतकेतु पिता की आज्ञा लेकर वापस गया। बहुतों से मिला - विद्वानों, तपस्वियों, ऋषियों-मुनियों से मिला । उन्होंने कहा : ''हम जो मनोगत है, मन की सीमा में है वही बता सकते हैं। परन्तु जिसे जानने से सब जाना जाये उस एक को जानना हो तो किसी ब्रह्मवेत्ता, आत्मज्ञानी संत के पास जाना चाहिए और ऐसे संत-महापुरुष तो कभी-कभी, कहीं-कहीं मिलते हैं ।''

श्वेतकेतु द्वारा पूछताछ किये जाने पर विद्वानों ने बताया : ''उद्दालक नाम के ऋषि हैं, वे आत्मज्ञानी हैं। उनके पास जाओ। वे ही तुम्हारे मन का समाधान कर सकेंगे ।''

श्वेतकेतु ने कहा : ''वे तो मेरे पिता हैं ।''

श्वेतकेतु ने वापस आकर शिष्यभाव से पिता की वंदना करके कहा : ''पिताजी ! जिससे सब जाना जाता है, जिससे सब समझा जाता है, जिससे सब सुना जाता है, देखा जाता है, सब क्रियाकलाप होते हैं, उस परम तत्त्व का ज्ञान देने की कृपा करें ।''

श्वेतकेतु की शिष्यभाव से की गयी प्रार्थना को स्वीकार करके उद्दालक ऋषि ने उसे आत्मज्ञान दिया। तब श्वेतकेतु को समझ में आया कि वास्तविक जानने जैसी तो यही ब्रह्मविद्या थी। यही सच्ची विद्या है। दूसरी सब विद्याएँ तो जानकारी मात्र हैं। ऐहिक विद्या तो पेट भरने की विद्या है, शरीर का अहं पोसने की विद्या है, जबकि ब्रह्मविद्या उस अहं को मिटाने की विद्या है।

हमारे शास्त्रों में भी उसका वर्णन इस प्रकार है :

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।

हे जीव ! यदि तुझे कुछ जानना हो तो उसे जान कि जिसे जानने के बाद फिर कुछ जानना शेष नहीं रहता। कुछ पाने की इच्छा हो तो उसे पा कि जिसे पाकर फिर कुछ पाना बाकी नहीं रहता और किसीसे मिलने की इच्छा हो तो उसे ही मिलने का प्रयास कर कि जिस एक के मिलने से सबसे एक साथ मिला जा सकता है। वह तेरे आत्मा के रूप में सदा तेरे साथ है।

भगवान शंकर वशिष्ठजी महाराज से कहते हैं :

''सहस्र नेत्रधारी इन्द्र भी देवता नहीं, तुम देवता नहीं हो या मैं भी देवता नहीं हूँ। किन्तु तुम, मैं और इन्द्र तथा सब जीव जिसकी सत्ता से हैं वह अन्तर्यामी आत्मा ही सच्चा देवता है। जो उसका श्रवण, पूजन, चिंतन, ध्यान करता है वह उसीमें तल्लीन हो जाता है और यदि वह व्यक्ति आँख की तेरह बार पलकें गिरे उतनी देर उसे बाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है। आँख की सत्रह बार पलकें गिरे उतने समय ध्यान करे तो राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। यदि कीर्तन के पश्चात् थोड़ी देर उस परमात्मा का ध्यान करे तो अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है।''

व्यवहार में देखें तो नाम और जिसका नाम है वह वस्तु अलग होते हैं, नाम और नामी भिन्न होते हैं। किन्तु परमात्मा का नाम और परमात्मा ये एक ही हैं। जब परमात्मा का नाम लेते हैं तब वैखरी, मध्यमा, पश्यंति और परावाणी जहाँ से उत्पन्न होती है उसका आधार परमात्मा ही है। पूरे विश्व का आधार परमात्मा है और वही परमात्मा आत्मा के रूप में हमारे

साथ है । उस आत्मा को जान लेने से सबका ज्ञान हो जाता है ।

इस नाशवान, क्षणभंगुर संसार का व्यवहार आभास-मात्र है । यह समझकर अपने-आप में ही तृप्त रहो और अपने हृदय में ही परम समता के उच्च अनुभव को पा लो । आत्मविद्या का अभ्यास करके आत्मज्ञान पा लेना यही सबके जीवन का परम लक्ष्य है । अतः उसकी सिद्धि के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए । वह बुद्धिमान है, वह धन्य है, वह सौभाग्यशाली है, जो उसके लिए प्रयत्न करता है ।

पूरे विश्व का आधार परमात्मा है और वही परमात्मा आत्मा के रूप में हमारे साथ है। उस आत्मा को जान लेने से सबका ज्ञान हो जाता है ।

प्रारब्ध का खेल

साधु नित्यानंद महाराज किसी गाँव में एक कुम्हार के वहाँ ठहरे थे । उस कुम्हार के बेटे का हाथ नित्यानंदजी महाराज ने देखा और कहा : ''कुम्हार! तुम तो संतों के बड़े भक्त हो । तुम्हारा बेटा भी भक्त तो होगा लेकिन उसके भाग्य में केवल पाँच रूपये और एक गधा रहेगा ।''

कुम्हार बोला : ''महाराज ! जो भी रहेगा, ठीक है। मैं अभी से चिन्ता क्यों करूँ ? यह पिछले जन्म में किसीका बेटा था, बाद में भी किसी और का बेटा होगा । मेरे चिन्ता करने से क्या होगा ? जैसा भगवान ने लिख रखा होगा, वैसा ही होगा महाराज !''

महाराज ने कहा : ''तुम धन्य हो कुम्हार ! कुम्हार होकर भी निश्चिंत हो ।

सुख से सोए संसार में, भाग्यवंत कुम्हार ।
चिंता रखी चाक पर, धन्य-धन्य अवतार ॥

चिंताओं को तुमने चाक पर चढ़ा रखा है । सचमुच तुम्हारा जीवन सफल है ।''

कुछ वर्षों के बाद घूमते-घामते महाराजजी उसी कुम्हार के वहाँ अतिथि हुए । वह कुम्हार तो भगवान के लोक में पहुँच चुका था । उसके बेटे ने महाराज का आतिथ्य-सत्कार किया । महाराज ने पूछा : ''कैसे हो बेटे ?''

बेटा बोला : ''ठीक हूँ महाराजजी ! संतों के लिए एक निवासस्थान बनाया है । आप उसे पावन कीजिए ।''

ऐसा कहकर बेटा महाराजजी को बड़े प्रेम से अपने घर ले गया और सेवा की ।

पूर्णिमा के दिन महाराजजी ने पूछा : ''बेटे ! तेरे पास कितना बैलेन्स बचा है ? आज पूनम है। हर महीने की पूनम को बैलेन्स देखना चाहिए ।''

बेटा बोला : '' महाराजजी ! पाँच रूपये और गधा है ।''

महाराजजी बोले : ''मेरा गणित और ज्योतिष सच्चा पड़ा । देख, पाँच रूपये और गधे को बेचकर कल सुबह भण्डारा कर देना । फिर देखते हैं क्या होता है ।''

बेटा बोला : '' जो आज्ञा महाराज !''

उसने गधे को बेचकर, उसमें पाँच रूपये मिलाकर सीधा-सामान लाकर साधु-संतों को बड़े प्रेम से खिलाया और रात्रि में निश्चिंत होकर सो गया ।

दूसरे दिन सुबह एक व्यक्ति उसको मिला और बोला : ''मुझे रात्रि को स्वप्न आया है कि पाँच रूपये और गधा तुम्हें दान कर दूँ, नहीं तो मेरा सर्वनाश हो जायेगा। भाई ! तुम ले लो ये पाँच रूपये और गधा।''

उसका बैलेन्स सेट हो गया । महाराजजी ने दूसरे दिन भी भण्डारा करवा दिया । तीसरे दिन फिर और कोई आकर उसका बैलेन्स ठीक कर गया । इस प्रकार रोज-रोज महाराजजी भण्डारा करवा देते और विधाता किसी-न-किसी के द्वारा उसका बैलेन्स सेट करवाते रहते। ऐसा कई दिनों तक चलता रहा ।

एक दिन महाराजजी जंगल में बहुत दूर तक घूमने निकल गये तब विधाता साकार रूप लेकर उनके सामने प्रगट हो गये और बोले : ''महाराज ! आप तो रोज

भण्डारा करवा देते हैं और मुझे उसका बैलेन्स ठीक करने के लिए न जाने किस-किसको स्वप्न देना पड़ता है । महाराज ! अब आप कृपा करो ।''

महाराज ने कहा : ''फिर उसका इतना छोटा-सा बैलेन्स क्यों बनाया ? बैलेन्स बड़ा कर दीजिए, नहीं तो रोज भण्डारे करवाऊँगा ।''

विधाता ने उसका बैलेन्स बड़ा कर दिया ।

इस कथा से पता चलता है कि तुम्हारे अथवा तुम्हारे पुत्र के प्रारब्ध में जितना अन्न-धन और चीज-वस्तु होगी उतनी मिलकर ही रहेगी । फिर पाँच रूपये और गधा हो चाहे पाँच करोड़ रूपये और गधा हो । 'गधा' का मतलब संसार की मजदूरी है, और क्या है ?

पाँच रूपये भी यहीं छोड़कर जाना है और पाँच करोड़ भी यहीं छोड़कर जाना है । कुछ भी साथ लेकर तो नहीं जाना है ।

किसीको खाने को नहीं मिला इसलिए भूख के कारण वह मर गया, इस बात पर मैं विश्वास नहीं करता । किसीको ओढ़ने को नहीं मिला इसलिए वह मर गया, इस बात पर भी मैं विश्वास नहीं करता । हाँ, अति खाकर या अति भोगकर व्यक्ति जल्दी मर गया, यह बात मैं मानता हूँ । इन चीजों में कोई काम-क्रोध करके ज्यादा उलझा और जल्दी मर गया, इस बात का मेरे पास सबूत है । किन्तु किसीको चीजें कम मिली और मर गया इस बात पर मैं राजी नहीं होता हूँ ।

ये चीजें कम होने से मनुष्य दुःखी नहीं होता है और अकाल मरता नहीं है । किन्तु उनके पीछे जब अंधी दौड़ लगाता है तो आदमी अशांत रहता है, दुःखी होता है और अकाल मरता है । मनुष्य के प्रारब्ध में जितना होता है, फिर चाहे पाँच रूपये और गधा ही क्यों न हो, उतना उसे मिलकर ही रहेगा । अतः इस कथा को याद रखकर संतुष्ट रहो ।

इसका अर्थ यह भी नहीं है कि प्रारब्ध के भरोसे आलसी हो जाओ । नहीं, अपना पुरुषार्थ तो होना ही चाहिए । किन्तु अपने जीवन को 'और खपे - और खपे... (और चाहिए - और चाहिए)' में मत खपा दो । अपना पुरुषार्थ पूरा होना चाहिए, प्रयास पूरा होन चाहिए, किन्तु उससे जो कुछ भी प्राप्त होता है उसमें संतुष्ट रहना चाहिए । अधिक वस्तु का लालच मनुष्य को अशांत और बेचैन कर देता है जबकि संतोषी सद सुखी रहता है ।

भगवान की शरण

जिसके पास सात द्वीपों का राज्य था, राजाओं में विजेता, कलियुग पर विजय पानेवाला, विशाल राज्य का राजा, जिसके राज्यकाल में प्रजा सोने के बर्तनों में भोजन करती थी ऐसे राजा परीक्षित को भी लग कि मुझे कोई महापुरुष मिलें और उनके कृपा-प्रसाद से आत्मज्ञान हो तो ही मुझे परमशांति मिल सकती है । उसके लिए उन्हें शुकदेवजी महाराज के चरणों में जाना पड़ा ।

शुकदेवजी महाराज से राजा परीक्षित प्रश्न पूछते हैं : ''जिसकी सात दिन में मृत्यु हो जाने वाली हो उसे क्या करना चाहिए ?''

इसके जवाब में शुकदेवजी महाराज कहते हैं : ''इन्द्रियों के भोग में रत हैं ऐसे जीवों को भगवत्प्राप्ति के लिए सात-सात जन्म भी कम पड़ते हैं । किन्तु तेरे जैसे बुद्धिमान के लिए सात दिन भी ज्यादा हैं । नश्वर वस्तुओं को नश्वर जानकर, उसकी आसक्ति न रखकर, शाश्वत् में प्रीति जगानी चाहिए । अतः तू भगवान की शरण में जा ।''

गांधीजी के जीवन में भी जब चमत्कार घटित होते तब वे अपने अनुभव लोगों से कहते थे । एकबार गोलमेज परिषद् में भारत की ओर से गांधीजी प्रतिनिधि के रूप में गये थे । तब उनसे मिलने के लिए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आईंस्टीन जर्मनी से आये थे । गोलमेज परिषद् में गांधीजी का व्याख्यान भी था । उसमें गांधीजी ने इतना सुन्दर भाषण दिया कि उनकी आलोचना करनेवालों और खिल्ली उड़ानेवालों ने भी उनकी बात का अनुमोदन किया और बारम्बार तालियाँ बजायीं

(अनुसंधान पेज २४ ऊपर)

मनः एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।

मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण मन ही है । मन यदि विषयासक्त है तो बंधन का कारण बनता है और विषयों की आसक्ति से रहित होता है तो मोक्ष का कारण बनता है । बंधन और मुक्ति किसी लोक-लोकांतर में बैठकर देवी-देवता हमारे लिए नहीं बनाते । हमारे पास शरीर और परमात्मा के बीच का सेतु जो मन है वही बंधन और मुक्ति का कारण बनता है ।

प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है, विषयों का भोग चाहता है । उसके लिए उसे लोगों को खुश करना पड़ता है । 'वोट' लेना है तो लोगों को खुश करो, ऐहिक वाहवाही चाहिए तो लोगों को राजी करो, धर्म में गति चाहिए तो लोगों की सेवा करो । **लेकिन राजी करना एक बात है और सेवा करना दूसरी बात है ।** जैसे बालक को चाकलेट या फटाके आदि देकर राजी कर दिया जाता है किन्तु यह उसकी सेवा नहीं है ।

बंधन और मुक्ति किसी लोक-लोकांतर में बैठकर देवी-देवता हमारे लिए नहीं बनाते । हमारे पास शरीर और परमात्मा के बीच का सेतु जो मन है वही बंधन और मुक्ति का कारण बनता है ।

आजकल इन किताबों की बिक्री ज्यादा है कि जिनके विषय हैं : 'लोगों को वश कैसे करना ? दूसरे को राजी कैसे करना ? दूसरे से काम कैसे लेना ?' ऐसी पुस्तकें विदेशों में छपती हैं । अपने देश में भी उसका अनुवाद होता है और हजारों-लाखों की संख्या में बिकती हैं । तत्त्वज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो **यह शोषण का प्रचार करने की पुस्तकें हैं । लोगों से काम लेकर भोग-विलास के ऊँचे-ऊँचे शिखर बाँधना, उनमें आप फँस मरना और लोगों का समय-शक्ति बरबाद करना । इन पुस्तकों से यही मिलता है ।**

ये पुस्तकें अभी बड़ी तेजी से बिकती हैं क्योंकि आदमी का दृष्टिकोण बहुत छोटा हो गया है । दूसरों का उपयोग करने की वृत्ति, दूसरों का उपयोग करके भोग भोगना, यह हल्के विषयी व्यक्ति की माँग है । लेकिन धार्मिक व्यक्ति दूसरों की सेवा करके भोग भोगना चाहेगा । हल्के विषयी का मन अशान्त रहता ही है, किन्तु उत्तम विषयी को भी परमशान्ति तो नहीं मिलती क्योंकि भोग में परमशांति की कोई गुंजाईश नहीं है, मुक्ति की कोई गुंजाईश नहीं है । जब तक मुक्ति नहीं मिली तब तक बंधन ही है और बंधन वाला कितना भी अपने को सुखी माने बेवकूफी के सिवाय और कोई सुख नहीं है ।

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।

लोकानुरंजन परमार्थ नहीं है ।

लोगों की वाहवाही चाहिए तो लोकानुरंजन करो । लौकिक विषय-विकारों का भोग चाहिए तो लोकानुरंजन करो । अगर धर्म चाहिए तो लोगों की सेवा करो । भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं :

धर्माविरुद्धो भूतेषु
कामोऽस्मि भरतर्षभ ।

'सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम मैं हूँ ।'

धर्म के अनुकूल अपनी कामनाएँ पूरी करना सेवा है लेकिन कामना पूरी करना भी परमार्थ नहीं है । मनचाही कामना पूरी करना यह तो हेवानियत है लेकिन धर्म का अवलंबन लेकर कामनाएँ पूरी करना यह भी कोई परमार्थ नहीं है । परमार्थ तो यह है कि जिस मन

में कामनाएँ उत्पन्न होती हैं, उस मन को विवेक से देखकर अपने मन को अपना शत्रु न बनने देना। अपने मन को अपना मित्र बनाना यह परमार्थ है।

मनः एव मनुष्याणां
कारणं बंधमोक्षयोः ।

हमारा मन ही बंधन का कारण है और हमारा मन ही मुक्ति का कारण है। अगर मन में ऐहिक विषय पाने की इच्छा है, ऐहिक वासनाओं को तृप्त करने की इच्छा है तो हमारा मन हमारा शत्रु है। यदि मन में नश्वर पदार्थों की वासना नहीं है तो वही मन आत्मज्ञान की तरफ चलता है।

लब्ध्वा ज्ञानं परां शान्तिः ।

आत्मज्ञान मिला तो परमशांति मिली। इच्छित पदार्थ मिला तो क्षणिक हर्ष मिलेगा। हर्ष की क्षण-क्षण करते हर्ष बढ़ जाये तो जितना जीवन में हर्ष का हिस्सा है उतना ही शोक होता है। आज के मानव को ऐहिक जगत् के आकर्षण ने ऐसा घेर लिया है कि वह सोचता है, दूसरों का शोषण कैसे किया जाये? दूसरों पर हकूमत कैसे चलायी जाये? ऐसे लेखों की किताबें मनुष्य को प्रभावित करती हैं और लाखों की संख्या में बिकती हैं। हकीकत में दूसरों का शोषण करके या दूसरों पर हकूमत चलाकर पूर्ण सुखी कोई हुआ हो, ऐसा हमने आज तक देखा-सुना नहीं है।

दूसरों का शोषण करके या दूसरों पर हकूमत चलाकर पूर्ण सुखी कोई हुआ हो, ऐसा हमने आज तक देखा-सुना नहीं है।

अगर आराम चाहे तू दे आराम खलकत को।
सताकर गेर लोगों को मिलेगा कब अमन तुझको ?

वैदिक संस्कृति के अनुसार देखा जाये तो मनुष्य के मन में सुख की अभिप्सा रहती है। सुख की लिप्सा, ऐहिक सुख या इन्द्रियों के द्वारा सुख पाने की जो लिप्सा है वही मनुष्य की योग्यता को नष्ट करती है। सुख लेने की आकांक्षा को मिटाने के लिए सुख देना शुरू कर दो और जो सुख देना शुरू करता है, उसका मन उसका मित्र बन जाता है। सुख लेना शुरू करते हैं तो मन शत्रु बन जाता है।

अगर दुनिया से इन्द्रियगत सुख लेने पर जोर दिया तो आपका मन आपका दुश्मन बन जायेगा और शरीर, मन एवं बुद्धि से दूसरों को सुख देने की कोशिश की तो आपकी सुख लेने की वासना सुख देने की भावना में बदल जायेगी। सुख देने की कल्पना मात्र से सुख-स्वरूप श्रीहरि का अंदर से स्वाद आना शुरू हो जायेगा, आपका स्वतंत्र सुख प्रकट हो जायेगा।

जिसका स्वतंत्र सुख प्रकट होता है उसका मन अमनीभाव को प्राप्त हो जाता है। उसका मन शुद्ध तत्त्व में स्थिति करने लगता है।

किन्तु आज का मनुष्य ऐन्द्रिक जगत् में इतना उलझा है कि बाहर के व्यवहार को तो वह अच्छी तरह निभाना चाहता है लेकिन जिससे व्यवहार होता है उस मन को अच्छा करने की कोशिश नहीं करता। जिससे मन ऊपर उठता है उस अच्छे में अच्छे, अपने आप की खबर आज के मनुष्य को नहीं है। बाकी सब खबर रखता है। कितना चतुर है मनुष्य! कितना विकास है आज के युग का!

सुख देने की कोशिश की तो आपकी सुख लेने की वासना सुख देने की भावना में बदल जायेगी।

बाह्य दृष्टि से देखा जाये तो विकास हो रहा है लेकिन अध्यात्म-दृष्टि से देखा जाये तो पतन हो रहा है। संकीर्ण विचारों के लोग कहते हैं कि इस्लाम खतरे में, धर्म खतरे में, लेकिन वे अपने-आप को खतरे में रख रहे हैं उसका पता नहीं है। जिस वक्त मन में जो धारा आयी उसमें वह बह चला। जिस वक्त तुम्हारे मन में जिसने जैसी धारा बहा दी वैसा अपने को मानकर

उसी धारा में बह चले ।

आज के कर्त्ता को अपनी वास्तविकता का पता नहीं है, अपने मूल घर का पता नहीं है । इसलिए कर्त्ता ने हर जन्म में न जाने कितने-कितने कर्त्तव्य निभाये। कभी पिता बन कर बेटे के साथ तो कभी बेटा बनकर पिता के साथ कर्त्तव्य निभाया । पति बनकर पत्नी के साथ कर्त्तव्य निभाया तो कभी जमाई बनकर ससुर के साथ कर्त्तव्य निभाया । कभी किसीके साथ तो कभी किसीके साथ कर्त्तव्य निभाये और न निभा सका, वे कर्त्तव्य चुभते रहे और मरते समय उनकी चुभन लेकर कर्त्ता फिर दूसरी जगह जन्मा ।

हम जिस दिन यह बात समझ जायेंगे कि संसार सुख देने में समर्थ नहीं है ओर न ही संसार सब दुःख मिटाने में समर्थ है, उसी दिन से ही सुखदायी श्रीहरि का ध्यान लगना शुरू हो जायेगा ।

यह कर्त्ता कौन है ? मन ही है । मन अगर इस संसार को सत्य मानकर इसमें से सुख लेने की कोशिश करता है तो समझो उसको दुःख ही दुःख मिलेगा । आज तक संसार से पूरा सुख किसीको नहीं मिला । हम जिस दिन यह बात समझ जायेंगे कि संसार सुख देने में समर्थ नहीं है और न ही संसार सब दुःख मिटाने में समर्थ है, उस दिन से ही सुखदायी श्रीहरि का ध्यान लगना शुरू हो जायेगा । दुःखहारी श्रीहरि हमारे दुःख दूर कर देंगे ।

संसार पूर्ण सुख देने में समर्थ नहीं है यह बात समझते ही कर्त्ता अपने सुख-स्वरूप की खोज करके गोता मारे तो वह अभी-अभी ही सुखी हो सकता है। **दुनिया कैसी है उसका विचार मत करना । देखने वाला मन किस वक्त कैसा है ? यह सोचना ।** देखने वाला मन जिस वक्त जैसा होता है उस वक्त दुनिया उसके लिए वैसी है ।

एक बाबाजी बैठे थे गाँव के बाहर । उनका छोटा-सा आश्रम था । कोई पथिक वहाँ से गुजरा । उसने बाबाजी से पूछा : ''इस गाँव में फूल-झाड़ आदि दिखाई देते हैं, नहर भी यहाँ से गुजरती है । इस गाँव में खेतों को देखकर मुझे लगता है इस गाँव के लोग सुखी हैं । हमारे वहाँ जरा धंधा कम है । तो मैं इस गाँव में रहूँगा तो कैसा रहेगा ? इस गाँव के लोग कैसे हैं ?''

बाबाजी ने कहा : ''जिस गाँव में तू रहता था, उस गाँव के लोग कैसे थे ?''

उसने मुँह चड़ाते हुए कहा : ''वे तो बड़े दुष्ट थे, नालायक थे। वे तो ऐसे थे वैसे थे।'' ऐसा कहकर भरपूर निंदा करने लगा ।

बाबाजी ने कहा :''भाई ! इस गाँव के लोग भी ऐसे ही हैं । यहाँ तेरा गुजारा नहीं होगा । उस गाँव के जैसे लोग थे उससे भी सवाये तुझे यहाँ मिलेंगे ।''

शिष्य सुन रहा है कि वैसे तो बाबाजी इस गाँव के लोगों की प्रशंसा करते हैं और इसको कहते हैं कि ऐसे ही हैं । थोड़ी देर के बाद दूसरा आदमी आया ।

उसने पूछा : ''महाराजजी ! मैं इस गाँव में रहना चाहता हूँ और आपको तो अनुभव होगा ही । कृपा करके बताइए कि इस गाँव के लोग कैसे हैं ?''

बाबाजी ने पूछा : ''तू जिस गाँव में रहता था, उस गाँव के लोग कैसे थे ?''

पथिक ने कहा :''वे तो बड़े सज्जन हैं, महाराज ! वे तो सत्संगी हैं, धर्मात्मा हैं । उनका स्वभाव तो क्या कहूँ ? बस, परहित-परायण हैं, मितभाषी हैं । बड़ी शांति से जीते हैं । सत्ता का सदुपयोग करके एक-दूसरे की सेवा में संलग्न हैं ।''

महात्मा बोले : ''इस गाँव के लोग भी वैसे ही हैं। उनसे भी सवाये अच्छे हैं ।''

शिष्य चकित हो गया कि दो घंटे पहले तो उस आदमी को गुरुजी ने कहा कि इस गाँव के लोग तो ऐसे-वैसे ही हैं और अब कहते हैं कि अच्छे हैं, परोपकारी हैं, धर्मात्मा हैं, मितभाषी हैं, इन्हीं गाँव के लोगों ने कुटिया बनाकर दी, मंडप बनाया, सब कुछ

बनाया। बड़े सज्जन हैं।

वह आदमी तो गया। शिष्य ने बाबाजी से पूछा : ''बाबाजी ! आप झूठ बोलना कब से सीखे?''

महात्मा बोले : ''हम झूठ बोलना नहीं सीखे। मनुष्य का जैसा मन होता है, वह जहाँ भी जायेगा, वैसा ही उसको वातावरण मिल जायेगा।''

आपके मन में जैसे विचार आते हैं उन्हीं विचारों के लोग आपको मिल जायेंगे। आपके मन में जैसी मान्यताएँ हैं ऐसी मान्यता के अनुरूप व्यवहार करने वाले लोग आपके आसपास मिल जायेंगे। आप समझोगे, लोग दुष्ट हैं तो बिल्कुल दुष्ट लोग आमंत्रित हो जायेंगे और आपसे दुष्टता का व्यवहार करेंगे। अथवा तो लोगों में छुपा हुआ दुष्टता का ही हिस्सा आपके सामने उभर आयेगा। आप समझोगे ये सज्जन हैं तो आपसे सज्जनता का व्यवहार करेंगे और यदि सब में ईश्वर को देखोगे तो आपमें ईश्वर को देखने वाले लोग आपके पास आ जायेंगे।

आपके मन में जैसे विचार आते हैं उन्हीं विचारों के लोग आपको मिल जायेंगे।

तो जैसा आपके मन का दृढ़ चिन्तन होता है, सूक्ष्म जगत् के वातावरण में भी वैसे ही देवता, गंधर्व, यक्ष, किन्नर और मनुष्य, उसी प्रकार के लोग आपकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। यह तो हुई व्यावहारिकता। लेकिन परमार्थ क्या है? लोकानुरंजन परमार्थ नहीं है, धार्मिकता भी परमार्थ नहीं है। मन से विषय-वासना का अभाव, मन की जो निर्विषयी वृत्ति है वह परमार्थ है।

जिस-जिस आदमी को जहाँ-जहाँ सुख का एहसास होता है, जैसे क्रिकेट खेलते समय, भजन गाते समय, भोजन बनाते या खाते समय, आनंद आता है, मजा आता है उस वक्त जाने-अनजाने उन व्यक्तियों का मन कुछ अंशों में एकाग्र होता है। जब-जब मन एकाग्र होता है तब-तब उस विषय में, उस कार्य में आनंद आता है, मजा आता है :

मन की एकाग्रता में दो शक्तियाँ छुपी हैं : एक तो आनंद और दूसरी सर्जन की क्षमता। जितना मन एकाग्र होता है उतनी उसमें खुशी आती है, आनंद आता है और उतना ही सर्जन का सामर्थ्य बढ़ता है। जो कार्य आपको रुचिकर है उसमें आपको आनंद आता है। आनंद आता है तो मन वहाँ लग जाता है। मन अनजाने में कुछ प्रतिशत एकाग्र हो जाता है। जैसे मान लो एक घण्टे में हजार संकल्प करने वाला मन है लेकिन आपको अपनी रुचि के अनुसार कोई काम मिल गया तो नौ सो संकल्प विकल्प होंगे। यह कल्पना है, अनुमान है। सातसौ भी हो सकते हैं, आठसौ भी हो सकते हैं। ऐसे ही जिनको अध्यात्म-विचार में रुचि है उनको सत्संग से जो आनंद आयेगा वह आनंद नये लोगों को नहीं आयेगा। जब-जब मन के अनुकूल घटना घटती है तब-तब मन के संकल्प विकल्प कम होने लगते हैं और आनंद आता है।

मन की एकाग्रता में दो शक्तियाँ छुपी हैं : एक तो आनंद और दूसरी सर्जन की क्षमता।

---

१. मंत्रजप से कलियुग में ईश्वर-साक्षात्कार सिद्ध होता है, इस बात पर विश्वास रखना चाहिए।

२. मंत्रदीक्षा की क्रिया एक अत्यन्त पवित्र क्रिया है, उसे मनोरंजन का साधन नहीं मानना चाहिए। अन्य की देखादेखी दीक्षा ग्रहण करना उचित नहीं। अपने मन को स्थिर और सुदृढ़ करने के पश्चात् गुरु की शरण में जाना चाहिए।

३. मंत्र को ही भगवान समझना चाहिए तथा गुरु में ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहिए।

४. मंत्रदीक्षा को सांसारिक सुख-प्राप्ति का माध्यम नहीं बनाना चाहिए, भगवत्प्राप्ति का माध्यम बनाना चाहिए।

- स्वामी शिवानंदजी

उपासना

जगत् की सारी उपासनाएँ विश्व के तमाम लोगों की उपासनाएँ पाँच प्रकार में समाविष्ट हो जाती हैं ।

एक है अग्नितत्त्व की उपासना । अग्नि का गुण रूप है । श्रीकृष्ण, श्रीराम आदि की उपासना रूप और गुण उपासना के अंतर्गत आ जाती है । देवी-देवताओं की जो भी उपासना की जाती है वह रूप उपासना कही जाती है ।

दूसरी प्राण उपासना । योगी प्राणायाम करके प्राण की उपासना करते हैं । तीसरी आकाश तत्त्व की उपासना है, जिसका गुण शब्द है । यह उपासना नाम, जप, कीर्तन, नादानुसंधान करके की जाती है। चौथी सगुण तत्त्व की उपासना है और पाँचवी निर्गुण उपासना है ।

एक है अग्नितत्त्व की उपासना । दूसरी प्राण उपासना । तीसरी आकाश तत्त्व की उपासना है । चौथी सगुण तत्त्व की उपासना है और पाँचवी निर्गुण उपासना है ।

साधक के लिए अपने उपास्य देव, फिर वे चाहे गुरु हों या ईश्वर, उन्हीं में पूर्ण रूप से खो जाना ही सच्ची उपासना है । रोना है तो उन्हीं के विरह में रोयें। हँसना है तो उन्हीं को प्रेम करते हुए हँसें । एकाग्र होना हो तो उन्हीं के चित्र को देखकर मन को एकाग्र करें । फिर वह चित्र चाहे श्रीकृष्ण का हो, श्रीराम का हो या गुरुदेव का हो। इष्ट की लीला का श्रवण करना यह भी उपासना है । इष्ट का चिंतन करना, इष्ट के लिए रोना, मन ही मन इष्ट के साथ चोरस खेलना, बातें करना यह भी उपासना ही है । यदि मनुष्य बीमार है तो सोये-सोये, रोते-रोते, हँसते-हँसते, चलते-चलते, खाते-खाते उपासना कर सकता है और मन को इष्टाकार बना सकता है ।

मेरे इष्ट गुरुदेव थे । मैं नदी पर जाता, इधर-उधर जाता तो मन ही मन गुरुजी से बात कर लेता । मैं प्रश्न करता :

''साँई ! आपका क्या हाल है ?''

भीतर से ही : ''अच्छा हाल है । तेरा हाल कैसा है ?''

''साँई ! जैसा आपका है वैसा ही मेरा हाल है ।''

इस प्रकार बातें करने से मुझे तो बड़ा मजा आता था । दूसरे इष्ट के साथ बात की नहीं जाती । जैसा किताबों में लिखा होता है वही पढ़ सुन कर चलाना पड़ता है । परंतु मैं तो अपने गुरुदेव की लीला, उनका हिलना-चलना, उठना-बैठना, देखने-बोलने का ढंग देख चुका था । इस कारण मेरा मन उन बातों में लग गया । अभी-भी पुरानी आदत के अनुसार घूमते-घामते अपने साँई से बात कर लेता हूँ । साँई साकार रूप में नहीं हैं परंतु अपना मन जो दो भागों में बँटा हुआ होता है, एक साँई होकर प्रेरणा देता है और दूसरा साधक होकर सुनता है क्योंकि साँईतत्त्व व्यापक है, ब्रह्मतत्त्व व्यापक है ।

मेरे गुरुदेव कभी-कभी अकेले कमरे में बैठ जाते थे । जगे हुए महापुरुष थे । उनका उपास्यदेव तत्त्व रूप में था । वे ठहाका मारकर हँसने लग जाते थे । फिर बोलते : ''बोल बेटा ! रोटी खायेगा ?''

''हाँ ।''

''रोटी तब खाएगा, जब सत्संग का मजा लेगा । बोल बेटा ! लेगा न मजा !''

''हाँ महाराज ! जरूर लूँगा ।''

''कितनी रोटी खायेगा ?''

''तीन तो खाऊँगा ही ।''

''तीन रोटी चाहिए तो तीनों गुणों से पार होना पड़ेगा । बोल, होगा न ?''

''हाँ साँई ! हो जाऊँगा । किंतु अभी तो जोरों की भूख लगी है ।''

''अरे भूख तुझे लगी है ? झूठ बोलता है ? भूख

प्राणों को लगी है ।''

''हाँ साँई ! प्राणों को लगी है ।''

''शाबाश ! खा ले रोटी, खा ले ।''

ऐसे करके खा लेते थे । उनका उपासना काल का अभ्यास पड़ा होगा इससे नब्बे साल की उम्र में भी कभी कभार पू. लीलाशाहजी लीला कर लेते थे ।

इष्ट का चिंतन करना अथवा इष्टों का इष्ट आत्मा अपनेको मानना, शरीर को अलग समझकर चेष्टा करना यह भी उपासना के अंतर्गत माना जाता है । लड़की जब ससुराल जाती है तब मायका छोड़ने में उसे कठिनाई होती है । जब ससुराल में 'सेट' हो जाती है तो मायके कभी-कभी आती है और आने पर भी उसके पैर वहाँ ज्यादा दिन टिकते नहीं हैं । 'कब जाऊँ ससुराल ।' ऐसा भाव बना रहता है । आज तक वही घर जिसे वह अपना घर मान रही थी, वह धीरे-धीरे माँ का घर, पिता का घर हो जाता है । पति के साथ ब्याह जाती है तो पति का घर अपना घर हो जाता है । वैसे ही उपासक अगर अपने इष्ट के साथ ब्याह जाता है तो उसे इष्ट का घर अपना घर लगता है और संसार का घर उसके लिए पराया हो जाता है । तुम्हारा असली घर परमात्मा का घर ही है । लड़की का पति तो सब कुछ नहीं बन सकता परंतु साधक का पति-परमात्मा सब कुछ बन सकता है । वह तुम्हारा पिता भी है, माँ भी है, वह भाई भी है, बहन भी है। वह पिता भी है। वह परमात्मा सब कुछ बना बैठा है।

लड़की का पति तो सब कुछ नहीं बन सकता परंतु साधक का पति-परमात्मा सब कुछ बन सकता है । वह तुम्हारा पिता भी है, माँ भी है, वह भाई भी है, बहन भी है । वह पिता भी है । वह परमात्मा सब कुछ बना बैठा है ।

हमने जब पहली बार सत्संग किया तब भीतर से आवाज उठी कि : ''साँई ! मैं क्या बोलूँ ? मुझे तो कुछ नहीं आता ।''

तब भीतर से ही जवाब मिला : ''अरे ! तू एक बार बोलना शुरू कर दे, अपने आप आ जाएगा । चिंता क्यों करता है ?''

पहले पहले सत्संग में चार आदमी भी आते तो सोचते थे कि क्या बोलेंगे ? मेरा कोई अभ्यास नहीं था । पहले कभी किया नहीं था परंतु गुरु की ऐसी कृपा थी और उनके साथ ऐसा तालमेल था कि तब से लेकर आज तक सत्संग की ऐसी गाड़ी चल पड़ी कि लाखों लोग उसका लाभ उठा रहे हैं । अपने कल्याण के मार्ग पर चल पड़े हैं ।

जो लोग उपासना के अधिकारी हैं उन्हें उपासना में दृढ़ बुद्धि रहे ऐसे लोगों का संग करना चाहिए । ऐसे वातावरण में ही रहना चाहिए ।

(पेज १८ से जारी...)

वे गांधीजी से खूब प्रभावित हो गये और मुलाकात के समय में गांधीजी से प्रश्न किया : ''आप इतना सुन्दर भाषण कहाँ से तैयार कर लाये ? कहाँ से पढ़ा ?''

इसके जवाब में गांधीजी बोले : ''मैं जब बोलता हूँ तब मैं भगवान की शरण हो जाता हूँ । मैं बोलता हुआ दिखता हूँ किन्तु मेरे बोलने में मेरे भगवान का हाथ होता है, इसीलिए वाणी का प्रभाव पड़ता है ।''

गांधीजी निरंतर यही अनुभव करते थे कि मेरे कार्य के पीछे भगवान् का हाथ है ।

भगवान कहते हैं : 'हे अर्जुन ! शरीर से तू जो भी करे उसे मेरी प्रसन्नता के लिए कर, मन से जो विचार करे उसे मेरी प्रसन्नता के लिए कर और बुद्धि से जो निर्णय करता है वह मेरे शुद्ध-बुद्ध, निरंजन स्वरूप का श्रवण करके तू निर्णय कर तो तेरे सब कल्मष दूर हो जायेंगे और तुझे परमशांति की प्राप्ति होगी ।'

'ऋषि प्रसाद' के सेवाधारी एजेन्ट भाई-बहनों को खास सूचना

१. आपको रसीद बुक मिलने के बाद एक महीने के अन्दर ही रसीद बुक वापस जमा करा दें।

२. आप जब रसीद बुक भेजें तब कौन-कौन-से सदस्यों को कौन-कौन से अंक दिये हैं यह अवश्य लिखें।

३. आप भले अपने हाथों से ही अंक वितरित करनेवाले हों फिर भी सदस्यों के पूरे नाम एवं पता अवश्य लिखें।

४. रसीद बुक जून, अगस्त, अक्तूबर, दिसम्बर, फरवरी एवं अप्रैल मास की दिनांक १५ के बाद भेजें तो उसका पूरा रिकार्ड आप अपने पास भी रखें। आपके एजेन्ट लीस्ट में इन बुकों के केवल रसीद नंबर ही दिये जाएँगे।

५. कार्यालय की ओर से अंक प्राप्त होने के बाद एक सप्ताह में ही अंक वितरित करके इसकी जानकारी कार्यालय को देनी होगी।

६. रसीद बुक अहमदाबाद के कार्यालय में अथवा पूज्यश्री के सत्संग-कार्यक्रम चलते हों वहाँ आश्रमवासी श्री भावेशभाई के पास जमा कराना होगा। इनके अलावा और कहीं भी बुक देना नहीं है।

७. आपके संपर्क के लिए आपका फोन नंबर अवश्य बताएँ।

८. अगर आपने अथवा आपके किसी भी सहकार्यकर एजेन्ट ने १०० अथवा १०० से ज्यादा सदस्य बनाये हों तो पासपोर्ट साईज का फोटोग्राफ, नाम, पता एवं एजेन्ट नंबर हमें भेजें। ऐसे एजेन्ट भाइयों को 'ऋषि प्रसाद' का एजेन्ट कार्ड दिया जाएगा।

आपकी ओर से कोई सूचन हो तो सहर्ष स्वीकार्य है। हरि ॐ.....

'ऋषि प्रसाद' कार्यालय

ग्राहक सदस्यों को खास सूचना

१. 'ऋषि प्रसाद' के शुल्क की रकम के साथ अन्य चीज-वस्तुओं के पैसे कभी मत भेजें। इस शुल्क के अलावा जो चीजों के पैसे हों उनको यहाँ अलग से भेजें।

२. 'ऋषि प्रसाद' द्विमासिक मेगेजीन विषयक पत्रों पर ही, 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय का पता लिखें। इसके अतिरिक्त पत्रों पर 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय न लिखकर केवल यह पता लिखें :

श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५.

३. सदस्य का निवास स्थान बदल गया हो तो उसकी जानकारी 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय को देते समय मूल पता बतानेवाली रसीद की झेरोक्ष कॉपी भेजना अत्यंत जरूरी है।

४. शुल्क भरते समय म.ओ. फार्म में, संदेशस्थान पर अपना पूरा पता, पिनकोड़ नंबर, ग्राहक नंबर एवं कब से सदस्यता का नवीनीकरण करना है, इसका उल्लेख अवश्य करें।

५. उ.प्र., राजस्थान, म.प्र., गुजरात एवं महाराष्ट्र में सेवाधारी के रूप में सेवा करने के इच्छुक साधक 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय का सम्पर्क करें। पत्र व्यवहार करते समय किस क्षेत्र में वे 'ऋषि प्रसाद' के वितरण का कार्य करना चाहते हैं यह अवश्य लिखें।

६. कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना नाम व पूरा पता एवं ग्राहक नंबर अवश्य लिखें।

७. 'ऋषि प्रसाद' का सदस्य शुल्क केश, डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा म.ओ. के रूप में ही स्वीकार किया जाता है। चेक स्वीकार नहीं किये जाते।

गुरु की सेवा के दौरान शिष्य को बहुत ही नियमित रहना चाहिए।

गुरु के दिव्य कार्य हेतु शिष्य को मन, वचन और कर्म में बहुत ही पवित्र रहना चाहिए।

ब्रह्मनिष्ठ गुरु की कृपा से प्राप्त न हो सके ऐसा तीनों लोकों में कुछ भी नहीं है।

ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादयश्च ये ।
मनोविकारस्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः ॥

(चरकसंहिता, सूत्रस्थान : ७.५८)

ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, मान तथा द्वेषादि जो मन के विकार हैं, वे सब बुद्धि के अपराध से उत्पन्न होते हैं। उसके कारण चाहे जितना पथ्ययुक्त एवं संतुलित भोजन करें फिर भी शरीर की जठराग्नि बिगड़ती है। अर्थात् शरीर की पाचनशक्ति बिगड़ने से अजीर्ण, कब्जियात, बार-बार पेट में वायु का भर जाना आदि तकलीफें होती हैं और जीवन नरकमय हो जाता है। अतः सत्संग का सेवन करके ईर्ष्या, भय, क्रोध, शोक आदि का शमन करना अत्यंत जरूरी है।

तन्महता महामूलास्तयौजः परिरक्षता ।
परिहार्य विशेषेण मनसो दुःखहेतवः ॥
तत्सेव्यं प्रशमो ज्ञानमेव ॥

(चरकसंहिता, सूत्रस्थान : ३०.१२, १३.)

हृदय का, हृदयआश्रित महामूला धमनियों का तथा हृदय में ही स्थित एवं समस्त देह में स्थित दो प्रकार के ओज का रक्षण करने के लिए मन के दुःख के जो कारण हों - काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिंता, शोक, भय आदि दूर करना चाहिए और शांति एवं ज्ञानपूर्वक सत्संग का ही सेवन करना चाहिए। ऐसा भगवान आत्रेय ने चरकसंहिता में कहा है।

उच्च रक्तचाप (High B.P.), निम्न रक्तचाप (Low B.P.) एवं अन्य प्रकार के हृदय-रोगों में मन की अशांति सबसे पहला और मुख्य कारण है। अतः मन शांत हो उसके लिए सत्संग यह पहली दवा है।

लहसुन

आयुर्वेद में लहसुन जैसी स्वास्थ्यवर्धक दूसरी कोई भी दवा नहीं है ऐसा कहें तो भी चले। लहसुन को यदि मात्रानुसार, अलग-अलग रोगों में, योग्य मार्गदर्शन द्वारा, औषधि के रूप में लिया जाये तो वह चमत्कारिक कार्य करता है। 'भावप्रकाश' में लहसुन की उत्पत्ति के संबंध में एक श्लोक में लहसुन का अलंकार युक्त वर्णन किया गया है। जब समुद्र-मंथन हुआ तब इन्द्रदेव के पास से अमृत लेने के लिए गरुड़ ने खींचातानी की थी उस समय जो अमृत की बूँदें पृथ्वी पर गिरीं उनमें से लहसुन की उत्पत्ति हुई है।

पृथ्वी पर कुल छः रस हैं : खारा, खट्टा, मीठा, तीखा, कसैला और कड़वा। इनमें से खट्टे रस के अलावा पाँचों रस लहसुन में होते हैं। लहसुन पौष्टिक, गर्म, स्निग्ध, कटु, मधुर, पाचक तथा वीर्यवर्धक है एवं शरीर के टूटे हुए स्थानों को जोड़नेवाला, बुद्धि के लिए हितकारी, पित्त तथा लोहवर्धक और बलवर्धक एक उत्तम रसायन है। लहसुन वात, पित्त और कफ तीनों का शमन करता है। कफ का शमन करने के लिए उसका उपयोग शहद के साथ करना चाहिए, पित्त के लिए लहसुन को मिश्री के साथ लेना चाहिए और वात के शमन के लिए घी के साथ सेवन करना चाहिए। लहसुन कब्जियात, हृदयरोग, अरुचि, मंदाग्नि, जीर्ण ज्वर, खांसी, श्वास, कफ, वायुगोला, कृमि तथा वायु को मिटानेवाला है। उष्ण गुण रखनेवाला लहसुन वात-रोगों में खूब फायदा करता है।

लहसुन की दो से पाँच कलियों को तलकर चबाने से और एक दो चम्मच घी पीने से हर प्रकार के वातजन्य रोग, आमवात, संधिवात, जोडों का दर्द, गैस की तकलीफ, कमजोरी, शिथिलता, यौनांग की दुर्बलता, स्नायु की दुर्बलता, सुस्ती आदि दूर होती है और हृदय को बल मिलता है।

लहसुन की कलियों को सरसों के तेल में उबालकर बनाया गया तेल खूब उपयोगी होता है। ठंड के कारण यदि कान दुःखता हो अथवा ठंडी हवा से कान में

बहरापन आ गया हो तो इस तेल को कुनकुना करके उसकी बूँदें कान में डालने से फायदा होता है । ठंडी के कारण यदि सिर दुःखता हो तब भी इस तेल की बूँदें कान में डालकर, सिर पर तेल की मालिश करने से आराम मिलता है। शीतऋतु में इस तेल की मालिश करके, गर्म पानी से स्नान करने से ठंडी का असर कम होता है । छोटे बालकों को यदि खांसी का रोग खूब परेशान करता हो तब छाती एवं पीठ पर इस तेल की मालिश करने से एवं लहसुन की कलियों की माला बनाकर पहनाने से खूब फायदा होता है ।

लहसुन की कलियों को चार-पाँच दिन धूप में सुखाकर, काँच की बरनी में भरकर ऊपर से शहद डालकर रख दें । पंद्रह दिन के बाद लहसुन की एक-दो कली को एक चम्मच शहद के साथ चबाकर, फ्रीज बिना का एक गिलास ठंडा दूध पीने से रक्तचाप (ब्लड़प्रेशर) नार्मल रहता है ।

लहसुन की कलियों का आधा चम्मच रस एक कटोरी छाछ में मिलाकर पीने से पेट के तमाम प्रकार के कृमियों का नाश होता है ।

लहसुन की गर्म प्रकृति (गुण) होने के कारण तथा तीखा होने के कारण पित्तप्रकोप वाले रोगी को, रक्तपित्त वाले रोगी को तथा गर्भवती स्त्रियों को उसका सेवन नहीं करना चाहिए । एवं गरमी के दिनों में भी गर्म प्रकृतिवाले व्यक्तियों को उसका सेवन करना हितकर नहीं है । अधिक मात्रा में लहसुन का सेवन करने से पेट में तथा आँतों में छाले पड़ जाते हैं, रक्त की कमी होती है (एनिमिया), हाथ-पैर, पेट एवं मूत्रमार्ग में जलन होती है। अतः लहसुन का उचित मात्रा में सेवन करने से ही वह अमृत के समान औषधि बना रहता है ।

लौकी

लौकी बारहों महीने मिल सके ऐसी सब्जी है । अधिक प्रमाण में उत्पन्न होने के कारण दूसरी सब्जियों की अपेक्षा सस्ती भी होती है । ऐसे सामान्य लगती लौकी अत्यंत गुणकारी है एवं स्वस्थ-अस्वस्थ सभी लोगों के लिए आहार में लेने योग्य है । लौकी का मूल संस्कृत नाम 'दुग्धतुंबी' है, जिसके ऊपर से मीठी लौकी, सफेद लौकी, लौकी आदि नाम पड़े हैं ।

लौकी का हलवा एक स्वादिष्ट व्यंजन है और फायदेमंद भी है । गरमी के कारण जिसका शरीर न बढ़ता हो और कमजोरी महसूस होती हो तो अच्छे पाचनशक्ति वाले व्यक्ति के लिए लौकी का हलवा खाना हितकारी है क्योंकि लौकी को 'धातुपुष्टिविवर्धनम्' कहा गया है । अतः बालकों के लिए भी लौकी का हलवा पुष्टिकारक है ।

लौकी पौष्टिक, धातुवर्धक, बलप्रद और गर्भपोषक है। पौरुष की कमजोरी वाले पुरुषों के लिए लौकी को भाप में पकाकर, सूप बनाकर सेवन करने से तथा हलवा बनाकर खाने से अत्यंत फायदा होता है । सगर्भावस्था में लौकी की सब्जी तथा हलवा खाने से गर्भ को पोषण मिलता है। लौकी हृदयरोग के मरीजों के लिए भी हितकर है ।

लौकी रस में मधुर है । मधुरता के कारण उसमें दूध के जैसे मधुर रस के कितने ही गुण हैं और इसीलिए वह ठंडी है। उसे 'शोठल निघंटु' में अतिशीतला कहा गया है अतः गरमी की ऋतु में तथा गरमी के रोगी के लिए अधिक अनुकूल है । अतिशीतला होने से पित्तज्वर में अधिक बुखार बढ़ जाने से लौकी को कीस कर उसकी पट्टियाँ रखी जाती हैं। यदि बर्फ न हो तो इसमें लौकी अच्छा परिणाम देती है ।

गरमी से आँखें दुःखती हों तो लौकी को कीसकर (कद्दूकस) उसकी पट्टी बाँधने से फायदा होता है। हाथ-पैर के तलवों में यदि जलन होती हो तो इसकी पट्टी बाँधने से अथवा रस चुपड़ने से खूब ठंडक मिलती है।

बाह्य उपयोग में 'लौकी का तेल' भी खूब हितकारी है । दिमाग की, आँखों की गरमी में, गरमी के कारण झड़ते बालों के लिए लौकी का तेल लाभदायक है । कई लोग लौकी को बुद्धिवर्धक भी मानते हैं अतः उसके तेल की मालिश से बुद्धिलाभ होता है । लौकी के तेल की मालिश करने से एवं उसकी बूँदें नाक में डालने

(अनुसंधान पेज ८ ऊपर)

छः माह के बच्चे ने पू. बापू से मंत्रदीक्षा ली

मार्च १९९१ में मैं अपने परिवार सहित पू. बापू की अमृतमयी वाणी सुनने के लिए सुमेरपुर आश्रम गया। पू. बापू ने सत्संग समारोह के अंतिम दिन दिनांक २७-३-९१ की शाम को मंत्रदीक्षा देने का आयोजन रखा। हम दोनों पति-पत्नी एवं मेरी माताजी ने पू. बापू से मंत्रदीक्षा ली। उस समय मेरी पत्नी की गोद में मेरा छोटा पुत्र जयसिंह स्तनपान कर रहा था। उस समय वह छः माह का था। मंत्रदीक्षा में हम दोनों ने एक जैसा ही मंत्र लिया। मंत्रदीक्षा लेने के बाद मैं ध्यान इत्यादि करता हूँ। पूजा एवं कीर्तन के समय जयसिंह मेरे पास ही बैठता है। कुछ दिनों से यह बालक जो अब तीन वर्ष का है, गुरुमंत्र का उच्चारण करता है। उसके मुँह से गुरुमंत्र सुनकर मैं तो दंग-सा रह गया। मुझसे भी यह बार-बार गुरुमंत्र बोलने के लिए कहता कि 'आप यह बोलो, ऐसा बोलो।' मैं आश्चर्य में पड़ गया कि जो मंत्र हमने लिया उसे यह कैसे जानता है और कैसे बोल लेता है ? मेरी पत्नी ने कहा : ''इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? इसने भी पू. बापू से मंत्रदीक्षा ग्रहण की है। यदि अभिमन्यु माँ के गर्भ से चक्रव्यूह का भेदन सीख सकता है तो यह माँ का दूध पीते-पीते मंत्रदीक्षा नहीं ले सकता है क्या ?''

उसके मुँह से यह जवाब सुनकर मैं अपने से ज्यादा अपने पुत्र को धन्य मानता हूँ, जिसने केवल छः माह की आयु में मंत्रदीक्षा ग्रहण की।

आज भी, अभी-भी यह लड़का अकेले में, पूजा के समय गुरुमंत्र गुनगुनाता रहता है। यहाँ तक कि पू. बापू की ऑडियो कैसेट के अलावा अन्य किसी प्रकार की कोई कैसेट चलने ही नहीं देता। मैं आज दावे के साथ कह सकता हूँ कि पू. बापू का, इससे छोटी उम्र का शिष्य शायद ही कोई होगा।

- नरपतसिंह, पाली, राजस्थान।

जिस धरा पर भक्ति होती हो और संतों की कृपा बरसती हो वहाँ की मिट्टी भी प्रभावशाली हो जाती है

मैं अठारह वर्ष का विद्यार्थी हूँ। मैंने अपनी प्रिय पत्रिका 'ऋषि प्रसाद' में पढ़ा कि यदि परम पूज्य बापू का नाम सच्ची श्रद्धा और प्रेम से लिया जाये तो इच्छित कार्य में सफलता अवश्य मिलती है। मेरे माता-पिता पूज्य बापू के साधक हैं। जब मेरे मुँह पर काले दाग पड़ गये तब मेरी माँ ने मुझसे कहा : ''यदि तू आश्रम के 'बड़ बादशाह' की मिट्टी मुँह पर लगायेगा तो बहुत फायदा होगा।''

पहले तो मैं इसे मजाक मानता रहा किन्तु एक दिन अचानक मेरी इच्छा हुई और मैंने 'बड़ बादशाह' की मिट्टी लगा ली तो पहले ही दिन बहुत अंतर आ गया। फिर तो मैं परम पूज्य बापू का नाम लेकर रोज मिट्टी लगाता रहा तो मेरे चेहरे में बहुत फर्क आ गया। मेरे पड़ोसी ने देखा कि इससे मुझे फायदा हुआ है तो उसने भी मिट्टी मँगाकर लगायी। तब वह भी कहने लगा कि इससे तो बहुत फर्क पड़ गया है और साँवला चेहरा थोड़ा-थोड़ा उजला भी होने लगा है।

वैसे तो इस कलियुग में लोग कहते हैं कि अभी क्या प्रमाण है ? परंतु मैं तो कहता हूँ कि यह मेरे सद्‌गुरु परम पूज्य बापू की कृपा है। मैंने अभी तक दीक्षा भी नहीं ली है फिर भी मेरे ऊपर मेरे सद्‌गुरु की कृपा की बारिश-सी हो रही है। जिस धरती पर निरन्तर भगवद्‌भक्ति होती हो वहाँ की मिट्टी भी अद्‌भुत प्रभाव रखती है।

- शैलेष आर., कालीगाम, अहमदाबाद।

संस्था समाचार

''जिस धरती, जिस जाति, जिस देश की प्रजा को लंबे अर्से तक तत्त्वनिष्ठ महापुरुष का सान्निध्य नहीं मिल पाता, वह देश, जाति, धरती हतभागी है।''

ये उद्‌गार महानगरी बम्बई में 'गीता-भागवत-सत्संग समारोह' में विश्ववंद्य विभूति पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा व्यक्त किये गये। रागरंग में मस्त, ऐशोआराम की विहार-स्थली, मायानगरी बम्बई भले ही उसके निवासियों को एक प्रकार से तरंगित, तेज एवं विलासी बनाती है किन्तु प्रगति प्रकृति का नियम है। बम्बई के नगरवासियों को जीवन का उद्धार करानेवाले, सोयी हुई चेतना को जगानेवाले, गीता का ज्ञान सुनानेवाले संत नसीब में थे।

पूज्यपाद सद्‌गुरुदेव की अमृतमयी वाणी में दिनांक २० से २५ अप्रैल तक 'गीता भागवत सत्संग समारोह' प्रख्यात क्रॉस मैदान (चर्चगेट) बम्बई में आयोजित हुआ। जो पुण्यशाली थे वे तो पहुँच ही गये। अपेक्षा से कहीं ज्यादा ही लोग पूज्यश्री को सुनने, उनका दर्शन करने एवं उनकी वाणी का रसास्वादन करने के लिए उमड़ पड़े थे। मंडप की तो बात ही क्या ? पूरे मैदान में कहीं भी पैर रखने तक की जगह न थी। बम्बईवासियों ने इस 'अलख पुरुष की आरसी' समान संतश्री को बहुत चाव से सुना और अपने जीवन को धन्य बनाया। उन्होंने मरने के बाद मुक्ति का आश्वासन नहीं पाया, किन्तु जीते-जी परमात्मरस का आस्वादन करने के लिए पूज्यश्री की सन्निधि में कदम उठाये।

दिनांक २९ अप्रैल से ४ मई तक हिन्दुस्तान की राजधानी दिल्ली में ऐतिहासिक लालकिला मैदान पर 'विश्वशांति सत्संग समारोह' के तहत अनेक लोग प्रेमरस पिलानेवाले, आत्मरस का आस्वादन करानेवाले, हरिरस की गंगा में सराबोर करानेवाले, मुरझाये हुए मनहूस चेहरे को मुस्कान देकर ऊपर उठानेवाले, हारे हुए को हिम्मत, दुःखी को दिलासा एवं अध्यात्म की राह पर चलनेवाले को ऊँगली पकड़कर परमपद तक पहुँचानेवाले, प्राणीमात्र के परमहितैषी पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू का सान्निध्यलाभ ले पाये। यहाँ आमजनता तो पूज्यश्री के अमृत-वचनों को घूँट भर-भरके पीती ही थी, लेकिन कई राज्यों के मुख्यमंत्री, कई सांसद, भारत सरकार के केन्द्रीय एवं राजकीय सचिव भी पूज्यश्री की अमृतवाणी में सराबोर होने के लिए बारी-बारी से आते रहे और अपने व्यक्तिगत, सामाजिक, राजकीय एवं आध्यात्मिक जीवन में भी पूज्यश्री का प्रेरणादायी मार्गदर्शन पाकर, हौसला बुलंद करने के, स्वार्थ-त्याग, सेवा, परोपकार एवं ईश्वर-सान्निध्य के संस्कारों से सज्ज हो धन्य हो उठे।

पूज्यश्री का ५३ वाँ जन्मदिन महोत्सव के रूप में खूब धूमधाम से यहाँ लालकिला मैदान पर मनाया गया। भक्तों ने खूब आनंद लूटा। इस प्रसंग का प्रसाद एक लाख से अधिक भक्तों को बाँटा गया। हजारों-हजारों भक्तों ने राजधानी दिल्ली में पूज्यश्री से मंत्रदीक्षा ली एवं अपने जीवन को सफल किया। दिनांक ४ मई को दिल्ली का सत्संग-समारोह पूर्ण हुआ और उसके पश्चात् पूज्यश्री का एकांतवास प्रारंभ हुआ।

दूसरी ओर यहाँ गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं बिहार में पूज्यश्री से मंत्रदीक्षा लिये हुए साधकों की विभिन्न समितियों द्वारा जगह-जगह पानी की प्याऊ लगाई गई एवं अन्न-वस्त्र के भण्डारे हुए।

इस प्रकार पूज्यश्री का जन्म-महोत्सव मात्र दिल्ली में ही नहीं, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान आदि भारत के ही प्रान्तों में नहीं, अपितु इंगलैण्ड, अमेरिका, कनाड़ा आदि विश्वभर के साधकों द्वारा

अपने-अपने नगरों में खूब धूमधाम से मनाया गया। स्कूल के बच्चों को बालभोज एवं सदाचार की शिक्षा, भक्तों को भक्ति-रस की प्राप्ति हुई। सब समितियों ने सुबह प्रभातफेरियाँ, दोपहर को भक्तिभाव से भरा हरि-कीर्तन सहित महाप्रसाद एवं शाम को अपने-अपने इलाकों में जाहिर सत्संग-सभाओं के द्वारा, पूज्यश्री के स्नेहमय संदेश को सुनकर, पूज्यश्री का जन्म-महोत्सव अपनी-अपनी सूझबूझ से, उमंग और उत्साह से मनाया।

जैसे शराबी शराब खोज लेता है, जुआरी जुआ का अड्डा खोज लेता है, ऐसे ही सच्चे संतों के सच्चे सेवक सेवाएँ खोज लेते हैं और तन-मन-धन से जुट जाते हैं। धनभागी हैं वे लोग एवं आयोजक, जो इस दैवी कार्य में साझीदार हुए।

पूज्यपाद सद्गुरुदेव हृषिकेश के आश्रम में दिनांक ५ मई के पश्चात् रुके। दिनांक २२ से २५ मई '९४ तक चार दिन के लिए गंगा तट पर स्थित तीर्थस्थल हृषिकेश में हरिकीर्तन, सत्संग एवं आत्म-उद्धारक दिव्य अमृतवर्षा का महोत्सव आयोजित हुआ जिसमें हजारों भाविक श्रद्धालु लाभान्वित हुए। इस 'अलख पुरुष की आरसी' के समान, ब्रह्मविद्या के ज्योतिर्धर, 'विश्व-प्रसिद्ध, संसारताप से तप्त जीवों के लिए छाया के समान सद्गुरुदेव के सान्निध्य में चार दिन तक, हृषिकेश शहर एवं उत्तराखंड के भाविक भक्त तथा देश के कोने-कोने से यात्रा करने आये धार्मिक-जन भी भक्ति, ज्ञान और योग की त्रिवेणी में स्नान करके तृप्त हुए।

गुजरात, राजस्थान के सीमावर्ती आदिवासी इलाकों में वर्तमान में चल रहे छाश-वितरण केन्द्र :

१. लांबड़िया : इस केन्द्र में देमती, दोतड़, गोलवाड़, खरणिया, लांबड़िया गाँवों के आदिवासियों के लिए छाछ-वितरण होता है जिसका लाभ हररोज २००० लोगों को मिलता है।

२. कोटड़ा : इस केन्द्र में जोटासण, टाढीवेड़ी, वींछी, मायासरा, सुबरी तथा राजस्थान के गुरा, पायर पाटी, वीरा, कंडी, उबरी वगैरह गाँवों के आदिवासियों के लिए छाछ-वितरण होता है। ३५०० लोगों को रोज छाछ दी जाती है।

३. पोशीना मोटा : चंद्राणा, पीपळिया, वरसाड़ी, खेजड़ो, काळ तळाव, गुंदीखाणा, सामेरा के १००० लोगों को रोज छाछ दी जाती है।

इसके पश्चात् मार्ग में आनेवाले गाँवों जैसे कि हिंगरिया, सेबलिया, दाणमहुड़ी, सुकाआंबा, टेबड़ा, पीपलसरी, राजगढ़, काळाखेतरा वगैरह गाँवों में छाछ दी जाती है जिसमें अंदाजन १००० व्यक्ति लाभ लेते हैं। इसके अलावा सुरत, बड़ौदा, भीलवाड़ा, उज्जैन, मंदासौर, उदयपुर, अहमदाबाद के विभिन्न क्षेत्रों में आमजनता के लिए निःशुल्क छाछ-केन्द्र चल रहे हैं।

पू. बापू के आगामी सत्संग कार्यक्रम

गुरुपूर्णिमा महोत्सव दिनांक २२ जुलाई १९९४. अहमदाबाद आश्रम में मनाया जाएगा।

खास सूचना

इस बार गुरुपूनम के पर्व पर फल-फूल, मेवा-मिठाई, कपड़े-लत्ते आदि कुछ भी स्वीकार नहीं किया जायेगा। मंडप में बैठे-बैठे ही सामुहिक दर्शन एवं मानसिक पूजन होगा। अधिक से अधिक समय सत्संग एवं ध्यान में व्यतीत हो ऐसी व्यवस्था आयोजित हो रही है। अतः चीज-वस्तुएँ लायें नहीं।

Registered with Registrar of Newspapers for India Under No.

दिल्ली में सत्संग समारोह में लाभ लेकर अद्‌भुत शांति एवं अपूर्व आनन्द का अनुभव करके धन्य होते हुए भाजपा के अध्यक्ष श्री लालकृष्ण अडवाणी, केन्द्रीय ग्रामीण विकास राज्यमंत्री श्री उत्तमभाई पटेल, केन्द्रीय विदेश राज्यमंत्री श्री आर. एल. भाटिया, दिल्ली विधानसभा के अध्यक्ष श्री चरतीलाल गोयल, दिल्ली वित्तमंत्री श्री जगदीश मूर्ति, सांसद श्री दिलीपसिंह भूरिया, सांसद श्री
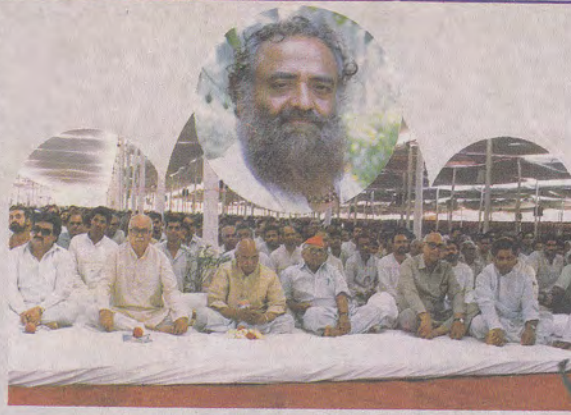
सरदार इकबालसिंघ, आर. एस. एस. के सरसंघचालक श्री राजु भैया आदि प्रतिस्पर्धी पार्टियों के नेता भी पूज्यपाद बापू के सत्संग में शांति, प्रेरणा, नयी दिशा प्राप्त करते हुए... धनभागी हैं ये नेता लोग जो ऐसे ब्रह्मवेत्ता सच्चे संत का सन्मान करके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक घण्टों तक उनके चरणों में बैठकर आत्मा को छूकर आती हुई सत्पुरुष की वाणी सुनने का लाभ ले रहे हैं।

राजधानी दिल्ली में विश्वशांति सत्संग समारोह में दि. १-५-९४ के दिन पू. बापू के ५३ वे जन्मदिन के

प्रसंग पर स्वागतगान, मंगल आरती, बेन्डबाजे एवं मधुर भजनों के साथ वधाई...

भक्तों के विभिन्न भाव... जन्म-महोत्सव के दिन पू. बापू के स्वागत-सत्कार की एक नई झाँकी

दिल्ली में लाल किला मैदान पर दि. २९ अप्रैल से ४ मई '९४ तक छः दिवसीय विश्वशांति सत्संग समारोह।

पूज्यपाद गुरुदेव के ५३ वें जन्म-महोत्सव का प्रसाद प्राप्त करते हुए हजारों हजारों भक्त एवं साधक...